तियों वाले
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी.

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—८२

मोतियों वाले

कर्त्तारसिंह दुग्गल

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

अशु के नाम–

कहानी-क्रम

दो शब्द

हमारे देशमें कहानी-कला कई मञ्जिलोंमें से गुजर चुकी है। परन्तु कलाका सम्बन्ध जीवनसे बहुत गहरा होनेके नाते वही कहानियाँ जीवित रहीं जिनमें इंसानकी महानताको व्यक्त किया गया है। मेरी दृष्टिमें अच्छी कहानी वह है जो अच्छे लोगोंका ज़िक्र करे, वे लोग जो अच्छे हैं; चाहे अच्छे बन चुके हैं, चाहे अच्छे बन रहे हैं। यह अच्छाई भौतिक भी हो सकती है और आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिक अच्छाई आखिर क्या अच्छाई हुई यदि वह भौतिक अच्छाई नहीं ?

बुराईका केवल बुराईको दर्शानेके लिए वर्णन करना, गन्दगीका केवल गन्दगीको उछालनेके लिए प्रस्तुत करना, मेरी रायमें, किसी अमर-कलाका विषय नहीं हो सकता। वैसे वकती तौरपर चाहे कोई कीचड़से खेल ले, कौन चाहता है कि उसके हाथ हमेशा मैलसे सने रहें ? कौन चाहता है कि कोई कूड़ेको संभाल-संभाल कर रखे ? बूदार नालीके किनारे घर बसानेवालोंकी नाक हमेशा सड़ती रहती है, उनके बच्चोंको सुगन्धकी पहचान नहीं रहती।

इसका यह अर्थ नहीं कि कलामें बुरे लोगोंका बखान करना वर्जित है। बुराईका स्थान कलामें अवश्य है, यदि वह बुराई अपने पास पड़ी हुई अच्छाईकी ओर अधिक उजागर कर दे, अच्छाई और अच्छी लगने लग जाये, प्यारी लगने लग जाये।

अपने देशमें प्रेमचन्दसे लेकर आजतकके कहानी-साहित्यपर दृष्टि डालते हुए मुझे केवल वही चीजें ज़िन्दा नज़र आती हैं, प्रभाव-शाली नज़र आती हैं, जिनमें अच्छे लोगोंकी अच्छाईका ज़िक्र है, या कम-से-कम

दो शब्द

हमारे देशमें कहानी-कला कई मञ्जिलोंमें से गुजर चुकी है। परन्तु कलाका सम्बन्ध जीवनसे बहुत गहरा होनेके नाते वही कहानियाँ जीवित रहीं जिनमें इंसानकी महानताको व्यक्त किया गया है। मेरी दृष्टिमें अच्छी कहानी वह है जो अच्छे लोगोंका ज़िक्र करे, वे लोग जो अच्छे हैं; चाहे अच्छे बन चुके हैं, चाहे अच्छे बन रहे हैं। यह अच्छाई भौतिक भी हो सकती है और आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिक अच्छाई आखिर क्या अच्छाई हुई यदि वह भौतिक अच्छाई नहीं?

बुराईका केवल बुराईको दर्शानेके लिए वर्णन करना, गन्दगीका केवल गन्दगीको उछालनेके लिए प्रस्तुत करना, मेरी रायमें, किसी अमर-कलाका विषय नहीं हो सकता। वैसे वकती तौरपर चाहे कोई कीचड़से खेल ले, कौन चाहता है कि उसके हाथ हमेशा मैलसे सने रहें? कौन चाहता है कि कोई कूड़ेको संभाल-संभाल कर रखे? बूदार नालीके किनारे घर बसानेवालोंकी नाक हमेशा सड़ती रहती है, उनके बच्चोंको सुगन्धकी पहचान नहीं रहती।

इसका यह अर्थ नहीं कि कलामें बुरे लोगोंका बखान करना वर्जित है। बुराईका स्थान कलामें अवश्य है, यदि वह बुराई अपने पास पड़ी हुई अच्छाईकी ओर अधिक उजागर कर दे, अच्छाई और अच्छी लगने लग जाये, प्यारी लगने लग जाये।

अपने देशमें प्रेमचन्दसे लेकर आजतकके कहानी-साहित्यपर दृष्टि डालते हुए मुझे केवल वही चीजें ज़िन्दा नज़र आती हैं, प्रभाव-शाली नज़र आती हैं, जिनमें अच्छे लोगोंकी अच्छाईका ज़िक्र है, या कम-से-कम

बुरे लोगोंकी बुराईकी तरफ़ पीठ है और अच्छाईके लिए एक कोशिश है, इस कोशिशमें चाहे कोई पहला ही क़दम उठा रहा हो।

आजकल जिस चीज़को हम लघुकथा मानते हैं वह पञ्जाबमें सही मानोंमें १९३५ के आस-पास लिखी जाने लगी थी। १९४० में कृष्ण-चन्द्र, अश्क और राजेन्द्र सिंह बेदी के कहानी संग्रह पहली बार छपे। मेरा पहला संग्रह भी १९४० में छपा। कहानियोंके इन संग्रहोंके बाद इस बातमें ज़रा भी सन्देह न रहा कि कहानीकी नयी कला एक ज़िन्दा रहनेवाली चीज़ है, और साहित्यमें इसका स्थान स्थायी है।

कला केवल कलाके लिए है या जीवनके लिए? इस विषयपर चाहे उन दिनों चर्चा आरम्भ हो गई थी, पर अक्सर कहानियाँ जो उन दिनों नये लेखकोंने लिखीं उनका जीवनसे सम्बन्ध बहुत कम होता था।

वास्तवमें कहानी-कला उन दिनों एक नयी-नयी चीज़ थी। नयी चीज़ के साथ नये-नये प्रयोग करना स्वाभाविक है। प्रतीकवाद चेतनाकी लहर, यथार्थवाद आदि नामके कई खेल हमने इस नयी कलाके साथ खेलने शुरू कर दिये।

यह सोचकर कि प्रगतिशीलता इसमें है कि कलामें साधारण मनुष्यको चित्रित किया जाये, मज़दूरका ज़िक्र किया जाये, किसानके बारेमें कहा जाये, हम साधारण मनुष्यकी दरिद्रता, अभाव और बेवसीका चित्रण करते-करते, उसके जीवनके भद्दे-से-भद्दे, गन्दे-से-गन्दे, कुरूप-से-कुरूप पहलुओंको दर्शाने लगे। क्योंकि साधारण मनुष्यके हिस्सेमें नदीके मख़-मली किनारे नहीं, फूलोंके महकते उपवन नहीं, हमने कीचड़का वर्णन करना शुरू कर दिया, नालियोंकी चर्चा आरम्भ कर दी। और इस तरह करते हुए घड़ीका पैण्डुलम इतना इस ओर आ गया कि हमने नालियों को खंगोल-खंगोलकर उनमें छिपे मैलको और भी मैला करके दर्शाना शुरू कर दिया। इस्मत चुगताईने 'लिहाफ़' नामक कहानी लिखी, सआदत हसन मंटोंने 'काली शलवार' लिखी, मेरी कहानी 'रैक्सी' की लाहौरमें

बहुत चर्चा हुई। इस कहानीकी पाण्डुलिपि राजेन्द्र सिंह बेदी, प्रो० मोहन सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, सरदार खुशवन्त सिंह आदिके हाथोंमें घूमती हुई उर्दूके विख्यात कवि 'मीरा जी' के पास पहुँची और फिर खो गई। अगर वह कहानी छप जाती तो मेरा भी कदाचित् वही हाल होता जो 'मंटो' और 'इस्मत' के साथ उस समयकी सरकारने किया था।

पर बहुत देर तक हम लोग इस तरह गुमराह नहीं हो रहे, हमें समझ आ गई। और पंजाबमें हम नौजवान साहित्यकारोंने स्वस्थ मूल्योंको अपना लिया। मेरे तीसरे कहानी संग्रहके बाद मेरी कहानियोंमें एक सचेत प्रयत्न इस बातका प्रतीत होता है कि कहानी केवल जीवनके समीप ही न हो, बल्कि ऐसे जीवनको प्रस्तुत करे, जो जीवन इस बातका अधिकारी है कि एक कुशल कलाकार उसकी अभिव्यक्ति करे, सुलझी हुई रुचिका पाठक उसे पढ़े।

कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें माँ-बहनोंमें बैठकर कहा जा सकता है, कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें कोई मित्रों आदिमें बैठकर कह सकता है, और कई ऐसी होती हैं जिन्हें कहनेसे पहले आदमी आगे देखता है, पीछे देखता है कि कोई सुन तो नहीं रहा। आखिर ऐसी चोरी क्यों की जाये?

मेरा यह विश्वास है कि अच्छी कहानी वह है जिसे पढ़कर अच्छे भाव जाग्रत हों। आदमी खुश होता है किसी अच्छे आदमीसे मिलकर, चाहे वह आदमी किसी कहानीका पात्र हो, चाहे वह आदमी हमारा पड़ोसी हो। जो काम जीवनमें हमें उत्साह देते हैं, उनका वर्णन ही केवल हमें जीवनमें उभार सकता है। जीवनके स्वस्थ मूल्यों और कलाके स्वस्थ मूल्योंमें कोई अन्तर नहीं। कुछ इस तरहके मेरे विचार हैं और इसी तरह मैं लिखता हूँ।

—कर्तार सिंह दुग्गल

मोतियों वाले

पीछे हमारे गाँवमें कुछ घर रज़वाड़ोंके थे। हमलोग उनको 'मोतियोंवाले' कहा करते थे। रजवाड़ोंके ढोर किसी खेतमें चर सकते थे। गाँवमें से आता-जाता रजवाड़ा किसीको भी कोई फरमायश कर सकता था और सुनने वालेको वह बात पूरी करनी होती थी। रजवाड़ोंकी मैली नज़रें गाँवमें किसी भी स्त्री पर पड़ सकती थीं और उनको कोई कुछ नहीं कह सकता था। अपना सतीत्व संभालनेकी जिम्मेदारी हर स्त्रीकी अपनी थी, और गाँवकी बहू-बेटियाँ ढकी-लिपटी बाहर निकलतीं, लुक-छिपकर जीवन गुज़ार लेतीं। रजवाड़ोंकी भौएँका अंग्रेज़ सरकारने मामला माफ़ किया हुआ था। मवेशियोंकी मंडीमें हर मंगलको जितना टैक्स इकट्ठा होता रजवाड़ोंको वह ख़ज़ानेमें जमा नहीं करना होता था। रजवाड़ोंके कपड़े हमेशा दूधसे सफ़ेद होते थे जिनको धोनेकी ज़िम्मेदारी गाँवके बरेठोंकी थी। किसीकी कोई चीज़ किसी रजवाड़ेके मन भा जाती, उसे वह चीज़ उनकी भेंट करनी होती थी। बाजारमें से, गली, मुहल्लोंमें से, रजवाड़ोंका चाहे कुत्ता भी गुज़रे, लोग बैठे हुए खड़े हो जाते थे। रजवाड़े हँसते तो सारा गाँव हँसता, रजवाड़ोंके दुःखमें सारा गाँव दुःखी होता। जो बात रजवाड़े करते वही बात अच्छी मानी जाती। 'मोतियों वाले' जो वह ठहरे।

और फिर देश आज़ाद हो गया। देशकी आज़ादीके साथ देशको बाँट भी दिया गया। देशके बँटवारेके समय जो फ़साद हुए वह किसीको भुलाये नहीं भूलते। हमारे गाँवके रजवाड़ोंने अपने हिन्दू-सिखोंको जैसे अपने परोंके नीचे छुपाये रखा। और फिर जब लोग उनसे बेक़ाबू हो गये तो वह हम सबको अपने साथ लाकर सरहद पर छोड़ गये। बिछु-

ड़ते समय उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे और 'मोतियों वाले—मोतियों वाले' कहते हमारे जैसे मुँह न थकते हों।

अमृतसरमें जो घर हमें एलाट हुआ वह शहरसे ज़रा हट कर था। हमारी कोठीके साथ पाँच-सात और कोठियाँ थीं और बस। हमारे साथ वाली कोठीमें किसी देशी रियासतका एक राजकुमार रहता था। उसने छह कोठियाँ ख़रीद रखी थीं। एक में स्वयं रहता था, शेष पाँचको उसने किराये पर चढ़ा रखा था। कुछ दिन हमें इकट्ठे रहते हुए कि राजकुमारके बच्चे हमारे बच्चोंके साथ खेलने लग गये। राजकुमारकी पत्नी हमारे यहाँ आती, हमारे यहाँसे उनके यहाँ जाती। उनको किसी चीज़की आवश्यकता होती तो हमारे यहाँसे मँगवा लेते, हमारे यहाँ कोई चीज़ कम पड़ जाती तो हम उनके घरसे पुछवा लेते। कई बार खेलते-खेलते हमारे बच्चे उनके बच्चोंको पीट आते, कई बार खेलते-खेलते उनसे मार खा आते। राजकुमारकी पत्नी हमारे आँगनमें बैठी कई बार कितनी-कितनी देर गुज़रे हुए समयकी बातें करती रहती। महलोंका जीवन, राजाओंके ठाठ, हुकमरानीके मज़े। अब भी हमलोग राजकुमारकी पत्नीको 'टिका रानी' कहकर बुलाते थे। राजकुमारको 'टिकासाहब' पुकारते थे। एक मामूली सरकारी कर्मचारीके पड़ोसमें एक देशी रियासतका राजकुमार रहता था! टिकारानीको जो टिका साहबसे कोई शिकायत होती तो हमारे यहाँ आकर अपने मनको शान्त कर लेती। टिकारानीको अपने बाकी परिवारसे कोई निराशा होती तो हमारे यहाँ आकर अपना दुःख रो लेती। नौकरोंसे तो उसे हमेशा शिकायत रहती थी। कोई चोर था, कोई गुस्ताख़ था, कोई बदतमीज़ था, कोई निकम्मा था और मजाल है उनके यहाँ कोई नौकर टिक जाय। बस एक आया थी जो पुराने समयसे उनके यहाँ चली आ रही थी और जो अब टिकारानीका बस एक सहारा थी, उसके सुनहरी समयकी एक मीठी याद। एक रोज़ मैं अपने बगीचेमें टहल रहा था। पड़ोसियोंकी आया उनके बच्चेको वहाँ

खिला रही थी। 'मोतियां वाले' 'मोतियोंवाले' कहके वह उसको पुकारती। बच्चा बार-बार वही बात करता जिससे वह उसे रोकती। आया फिर उसे 'मोतियां वाले' 'मोतियां वाले' कहती। उसका मुँह जैसे न थकता हो।

और मुझे गाँवके रजवाड़ोंका ख्याल आने लगा, जिनको हम 'मोतियों वाले' पुकारा करते थे। जिनके ढोर किसी खेतमें चर सकते थे। जिनकी मैली नज़रें किसी भी औरत पर पड़ सकती थीं और उनको कोई कुछ नहीं कह सकता था। जिनके कपड़े हमेशा दूध-से सफ़ेद होते थे, जिनको धोनेकी ज़िम्मेदारी गाँवके बरेठोंकी थी।

इस बातको कई साल गुज़र गये। नौकरीके चक्करमें हम एकसे ज़्यादा शहर घूमकर अमृतसरसे भी बड़े एक शहरमें आये हुए थे। कई दिनसे इस शहरमें बड़ी गहमा-गहमी थी। म्युनिसिपल कमेटीके चुनाव होनेवाले थे। हररोज़ शामको जलूस निकलता। 'ज़िन्दाबाद' 'ज़िन्दाबाद' करते लोग झंडे लिए हमारे सामने सड़क परसे गुज़रते रहते। रात गये तक दूर बाज़ारमें लाउडस्पीकरों पर लोगोंके बोलनेकी आवाज़ें आती रहतीं। कभी कोई गाने लगता, कभी कोई कविता सुनाने लगता। एक जलूस ट्रकों पर निकला, इस पार्टीकी निशानी ट्रक था। एक जलूस टांगों पर निकला, इस पार्टीकी निशानी टांगा था। एक जलूस बैल-गाड़ियों पर निकला, इस पार्टीकी निशानी बैलगाड़ी थी। एक पार्टीके लोग सड़कसे गुज़र कर जाते और दूसरी पार्टीके लोग आ जाते। यह लोग हटते कि तीसरी पार्टी वाले थैया-थैया करते कहींसे निकल आते। बड़ोंको देखकर बच्चे भी उनके साथ शामिल हो जाते और जो भी पार्टी आती उसके साथ 'ज़िन्दाबाद ज़िन्दाबाद' करते रहते।

कई दिन इसी तरह होता रहा। फिर एक रोज़ म्युनिसिपल कमेटीके कर्मचारी आये और हमें चुनावके काग़ज़ दे गये। एक वोट मेरी थी,

एक वोट मेरी पत्नी की। उन्होंने बताया कि तीन रोज़के बाद वोट डालना है। हमारा बूथ सामने वाले बाज़ारको छोड़कर बच्चोंके स्कूलमें था।

जिस दिन वोट डालना था उस रोज़ शहरके सब दफ़्तरोंमें छुट्टी हो गई। सुबह जब हम उठे तो हम सोचने लगे कि वोट किसको देंगे।

'हमें तो किसीने पूछा भी नहीं', मेरी पत्नी कहने लगी।

और मुझे भी ख़्याल आया कि न एक पार्टीका, न दूसरी पार्टीका और न तीसरी पार्टीका, हमारे पास तो कोई भी नहीं आया था।

'हमारे यहाँ जो भी आया', मेरी पत्नी बोली, 'मेरी तो शर्त यह है कि पहले हमारे सामनेके नालेको पक्का कराया जाय, फिर मैं वोट दूँगी।'

'हाँ, नाला गन्दा तो बहुत है', मैंने उत्तरमें कहा, 'नाला तो साफ़ होना ही चाहिए।'

'नाला और इस ओरका खुला मैदान', मेरी पत्नी फिर बोल रही थी, 'इस मैदानमें तो हमेशा कूड़ा-कर्कट पड़ा रहता है। यहाँ सड़कको कोई नहीं साफ करता, कूड़ा होता है हवासे उड़ जाता है, वर्षासे धुल जाता है। और फिर कमेटी वालोंको चाहिए कि सड़कपर वृक्ष लगायें, उनके जँगले बनवाएँ, माली रखें, खादका प्रबन्ध हो, पानीका प्रबन्ध हो, और सड़क पर ये लोग फलोंवाले वृक्ष क्यों नहीं लगवाते? सायेका साया और फलके फल। सालके साल फलोंका ठेका दे दिया जाये। मुझसे कोई पूछे तो मैं आमोंके पौदे सड़क-सड़क लगवाऊँ।'

आमोंका ख्याल आते ही मेरी पत्नीका मुँह मज़ेसे जैसे भर गया और वह चुप हो गई।

पर हमें तो वोटोंके लिए किसीने पूछा भी नहीं—मुझे फिर ख्याल आया।

वरामदेमें बैठे हम अख़बार पढ़ते रहे। सारी सुबह गुज़र गई। दोपहर हो गई। हमारे सोनेका समय आ गया। दोपहरको खानेके बाद मेरी पत्नी ज़रूर सोती थी। पर कोई भी तो नहीं आया। न एक पार्टीका, न दूसरी पार्टीका, और न तीसरी पार्टीका।

हम अभी तक प्रतीक्षा कर रहे थे।

फिर अपने काम-काजसे अवकाश पाकर हमारे नौकर छुट्टीके लिए आये। रसोइया, आया, माली, ड्राइवर, अर्दली, जमादार सब वोट देने जा रहे थे। मैंने उनसे पूछा किसको वोट दे रहे हैं। किसीने किसीके साथ वादा किया हुआ था; किसीको किसीकी सिफ़ारिश आई हुई थी।

कोई पन्द्रह मिनट प्रतीक्षा करके मेरी पत्नी अन्दर सोनेके लिए चली गई। और मैंने सोचा बेकार बैठा क्या करूँगा, एक चक्कर दफ़तर का ही लगा आऊँ, आजकी डाक आई होगी।

और मैं दफ्तर चल दिया। कोठीके गेटके बाहर सड़कपर मैंने देखा कई रिक्शा खड़े थे। और सामने हमारा बैरा था, बैरेकी पत्नी थी। आया थी आयाका पति था। माली था, मालीकी दो घरवालीं थीं। ड्राइवर था, ड्राइवरका भाई था, भाईकी पत्नी थी। अर्दली और उसकी औरत थी। जमादार था, जमादारकी माँ थी, जमादारका पिता था, जमादारकी तीन जवान बहनें थीं। और किसी उम्मीदवारका एजेण्ट उन्हें एक ओर खींच रहा था, किसी उम्मीदवारका एजेण्ट उन्हें दूसरी ओर खींच रहा था। 'मोतियां वालो इधर आओ' तीसरा उम्मीदवार स्वयं उनके हाथ जोड़ रहा था, 'मोतियोंवालो मैं खुद हाजिर हुआ हूँ, स्वयं चलकर आया हूँ, मोतियोंवालो...'और ढेर से रिक्शा इन ढेर सी वोटोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

मोतियों वाले! अकेला अपनी एक मात्र वोटको जेबमें डाले दफ्तरकी ओर जा रहा। मुझे बार-बार अपने गाँवके रजवाड़ोंका ख़्याल

आने लगा, जिन्हें हम 'मोतियों वाले' कहकर पुकारते थे। जिनके ढोर किसी भी खेतमें चर सकते थे, जिनकी मैली नज़रें किसी भी औरतपर पड़ सकती थीं और उनको कोई कुछ नहीं कह सकता था। जिनके कपड़े दूधसे सफ़ेद होते थे, जिनको धोनेकी जिम्मेदारी गाँवके बरेठों की थी। 'मोतियोंवाले।' टिका साहब, टिका रानी और उनका बच्चा, जिनकी छह कोठियाँ थीं। एक रहनेके लिए थी, शेष पाँचका वे किराया खाते थे। जिनको महलोंका जीवन, राजोंके ठाठ, हुकमरानीके मज़े अभी तक नहीं भूले थे। जिनकी आया हमेशा जिनके बच्चोंको 'मोतियों वाले' 'मोतियों वाले...' कहकर पुकारती थी। 'मोतियों वालो! मैं स्वयं चलकर आया हूँ, मोतियों वालो!' एक खद्दरधारी महोदयकी आवाज़ फिर कितनी देर मेरे कानोंमें गूँजती रही।

भगवान् और रेडियो

वैसे उसे कोई छुट्टी नहीं होती थी। उसका काम ही कुछ इस तरह का था। छुट्टीके दिन तो सड़कों पर और भी अधिक छिड़कावकी आवश्यकता होती। जितने अधिक लोग बाहर घूमनेको निकलते उतनी ही अधिक धूल उड़ती। नगर कमेटीने पानीके छिड़कावके लिए मोटरें रखी हुई थीं। इसी तरहकी एक मोटरका वह ड्राइवर था।

कई बार तो कई-कई महीने आकाशकी आँखसे पानीकी एक बूँद न टपकती थी और सुबह-शाम सुबह-शाम सप्ताहके सातों दिन वह शहरकी लम्बी-लम्बी सड़कों पर पानीकी टंकियाँ भर-भरकर खाली करता रहता। गर्मियोंकी दुपहरीमें झुलसी हुई धरती पर जब वह पानीका छिड़काव करता हुआ मोटरको चलाये जा रहा होता, तो उसे अपने आस-पासकी धरतीसे एक सुगन्ध-सी आती, एक ऐसी सुगन्ध जो किसी शिशुको अपनी माँके शरीरसे आती है और वह बार-बार अपना मुँह उसके स्तनोंके आगे-पीछे मारता रहता हैं। सर्दियोंमें तो कई बार उसे सड़कके किनारे पत्तों पर पड़े कोहरेको जैसे तोड़ना होता। कड़ाकेकी सर्दी होती। इस सर्दीमें भी उसे बार-बार टंकियाँ पानीसे भरनी पड़तीं और भर-भरकर सुनसान सड़कों पर ख़ाली करनी होतीं। इस तरह कई बार इस सुबह-शामके एकसे नीरस जीवनसे ऊब कर वह सोचता–काश; कहीं बारिश हो जाये! जिस रात बारिश होती, उससे अगले दिन उसे छुट्टी हो जाती। जो काम उसे करना होता था वह काम उसका भगवान् कर देता।

कई बार रातको सोनेसे पहले वह सोचता—आज भगवान् वर्षा कर दे, तो कल दोपहर तक सोनेका मजा आ जाय! कई बार जब वह यों

सोचता तो वर्षा हो जाती, कई बार वर्षा न होती। और जिस रातको पानी बरसता सवेरे वह सो-सोकर जागता और जाग-जागकर सोता। वह लेटा रहता, लेटा रहता जब तक उसके शरीरका अंग-अंग ऊब न जाता, थक न जाता।

फिर उसका विवाह हो गया।

उसकी पत्नी लाजवन्ती भोली-सी, अल्हड़ सी एक गाँवकी रहने-वाली थी। सवेरे जब उसकी आँख खुलती तो उसके साथवाली चारपाई पर उसका पति न होता। मुँह-अँधेरे ही वह अपने काम पर निकल जाता था। शामको जब उसकी पड़ोसिनें अपने-अपने घरवालोंके साथ बाजारमें घूमनेके लिए निकलतीं, सैर करनेको निकलतीं, तो लाजवन्तीका पति छिड़कावकी मोटर लिए सड़कों पर ड्यूटी दे रहा होता।

कई बार लाजवन्तीको उत्कट इच्छा होती थी कि जब वह सवेरे सोकर उठे तो चारपाई पर उसके होनेवाले बेटेका पिता लेटा हो और सूर्य निकलने तक वह इधर-उधरकी बातें करते रहें। जब ग्वाला दूध देनेके लिए आता था तो हमेशा लाजवन्ती उसकी प्रतीक्षा कर रही होती थी। वह सोचती—काश वह लेटी रहे लेटी रहे और फिर ग्वाला बाहर आकर द्वार खट-खटाये, और फिर वह उसे कहे, अरे भाई आ रही हूँ जल्दी क्यों मचाते हो? बिलकुल वैसे ही जैसे उसकी पड़ोसिन करती थी।

पर लाजवन्तीका पति तो...

फिर लाजवन्ती एक बच्चेकी माँ बन गई। फूल जैसे बच्चेका बाप बनकर भी वह कभी घर पर नहीं रहता था, न सवेरे, न सांझ को। दिन को उसे अवकाश होता था, खाना खाता, पड़ोसियोंसे इधर-उधरकी बातें करता, सौदा-सुलफ़ लाने बाहर चला जाता, कभी पीपलके नीचे बैठा ताश खेलकर दिन काट देता। दिनको लाजवन्ती-को भी तो कई छोटे-मोटे धन्धे उलझाए रहते। छोटे बच्चेके काम भी तो कितने होते हैं!

सवेरे बच्चा सो रहा होता। उसका बहुत जी चाहता कि वह अपने पतिके साथ कम्पनी बाग़की सैरको जाय। उसके सामनेवाले मकानमें रहनेवाली उसकी सहेली हर रोज़ सैर करने जाती थी। शामको जब बच्चेकी आँखोंमें काजल डालकर वह उसे सजाती, सँवारती तो बच्चा खिलखिलाकर हँसता रहता, और उसके पिताने एक बार भी तो उसे इस तरह हँसते नहीं देखा था।

पूनमकी एक सांझको लाजवन्तीने देखा कि उसकी पड़ोसिनें अगले दिन सवेरे मन्दिर गुरुद्वारे जाने की तैयारी कर रही हैं। रातको सोनेसे पहले उसने भी अपने पतिसे मन्दिर जाने के लिए कहा। "भगवान्को कहो बारिश कर दें, हम् भी हो आयेंगे,' उसने सहज भावसे उत्तर दिया और फिर उसकी आँख लग गई। अगले दिन पूर्णिमा थी। लाजवन्ती की बड़ी अकांक्षा थी कि वह हो, उसका बच्चा हो, उसके बच्चेका पिता हो और वे मन्दिर जाकेर पूजा करें। और उसने आकाशकी ओर देखकर भगवान्से प्रार्थना की, 'हे भगवन्, आज वर्षा कर दो।'

और सचमुच उस रात वर्षा हो गई।

अगले दिन लाजवन्तीके पतिकी छुट्टी रही। वे मन्दिर गये। लौटते हुए कम्पनीबाग़में से भी होते आये। बाज़ारसे उन्होंने बच्चेके लिए खिलौने ख़रीदे, और भी बहुत-सा छोटा-मोटा सामान ख़रीदा। और उस साँझ अपने पिताके पेट पर बैठा बच्चा कितनी देर हँसता रहा और अपने माँ-बापको हँसाता रहा। उस रात सोते समय लाजवन्तीको अपना-आप बहुत प्रिय लगा। पड़ोसियोंकी तरह आधी रात तक उनके क्वार्टरमें भी बत्ती जलती रही। वैसे हर रोज़ तो कहीं सूरज डूबने पर, उसका पति थका हारा घर लौटता था।

एक दिन वर्षा हुई। फिर जैसे भगवान् वर्षा करना भूल ही गये हों। अम्बालेकी मिट्टीसे अटीं सड़कें और इन न खत्म होनेवाली लम्बी

टेढ़ी सड़कों पर सुबह शाम वह पानीका छिड़काव करता रहता। एक दिन छुट्टी हुई, फिर कभी छुट्टी न हुई। कई दिन तो उसकी पत्नीने उस एक छुट्टीके नशेमें ही काट दिये। फिर जीवन रूखा-रूखा-सा लगने लगा। फिर उसे सुबह शाम क्वार्टर जैसे खानेको दौड़ता। फिर उसे अपनी पड़ोसिनें ज़्यादा खुश नज़र आने लगीं, उनके बच्चे उनके घर वालोंके साथ ज़्यादा हिले-मिले प्रतीत होने लगे।

और लाजवन्ती सोचती—काश, कहीं वर्षा हो जाये! पर वर्षा थी कि होनेका नाम ही न लेती थी। इस तरह प्रतीक्षा करते-करते एक महीना बीत गया। अगली पूनम आ गई। फिर पड़ोसिनोंको उसने दुपट्टों पर कलफ लगाते हुए देखा, फिर उसे उनके पति बूटों पर पालिश करते, हजामत बनवाते, कपड़ों पर लोहा फिरवानेके लिए ले जाते नज़र आते रहे। फिर उसके कानोंमें तैयारियोंकी आवाजें पड़ीं, बीस और छोटे-मोटे काम जो स्त्रियाँ सोचतीं वे उस दिन निपटा लेंगी।

उस रात लाजवन्तीका पति थका-हारा जब घर आया तो लाजवन्तीने उसे पूनमकी याद दिलाते हुए मन्दिर जानेका अनुरोध किया। एक मशीनकी तरह बरबस उसके मुखसे निकला, 'भगवान्‌से कहो, वर्षा करदें, 'फिर हम भी हो आयेंगे।' पति तो यह कह कर सो गया पर लाजवन्ती बड़ी विनम्रतासे, आस्था से प्रार्थना करती रही, 'हे भगवन् वर्षा कर दे! हे भगवन् वर्षा कर दे!……'

वैसे ही हाथ जोड़े, वैसे ही आँखें बन्द किये वह सो गयी। आधी रातको उसको अपने कानों पर विश्वास न हुआ जब उसे बाहर बादलोंके गरजनेकी आवाज़ सुनाई दी। और फिर रिमझिम-रिमझिम वर्षा होने लगी।

अगले दिन सवेरे काम पर जाने वाले कपड़ोंकी जगह उसके पतिने मन्दिरमें जाने वाले कपड़े पहने और पति-पत्नी, और उनका बच्चा भगवान्‌की पूजाके लिए मन्दिरकी ओर चल पड़े।

पिछली बारकी तरह मन्दिरमें जाते हुए लाजवन्तीने कम्पनी बाग़-की सैर भी की, वापिस आते हुए बाज़ारका चक्कर भी लगा लिया, शहरमें एक दो रिश्तेदारोंके घर भी हो आई। और सारा दिन हँसते-खेलते खुशी-खुशी कट गया।

अभी तीन दिन ही बीते थे कि दुपट्टेमें गोटा टाँकते हुए गोटा कम पड़ गया। गोटा चाहे एक बालिश्त ही कम था, पर दुपट्टा तो अधूरा ही रह गया। दो दिनोंके बाद उसकी बहन और बहनोई उसे मिलने आ रहे थे और उसके सिरका दुपट्टा फटा हुआ था।

काश, वह थोड़ी देरके लिए बाज़ार जा सके ! पर बाज़ार तो बहुत दूर था।

फिर उसका बच्चा ज़िद करने लगा और लाजवन्ती उसे मनाने लगी। फिर उसके बच्चेका पिता आ गया। छोटे-मोटे कामोंमें इधर-उधरकी बातोंमे रात हो गई।

सोनेके लिए जब लाजवन्तीने करवट ली, तो एक बार फिर उसे दुपट्टेका गोटा याद आया और फिर एकाएक उसके मुखसे निकल गया, 'हे भगवन् ! कहीं आज रात तू वर्षा कर दे तो......'

और फिर सहसा उसे अपने ऊपर जैसे लज्जा-सी आई। ऐसी लज्जा जो उसे बचपनमें अपने मुहल्लेके गुरुद्वारेके भाईसे दूसरी बार प्रसाद लेते हुए आती थी। रातभर लाजवन्ती सपनोंमें भूखी-प्यासी रेतके मैदानोंमें घूमती रही, पहाड़ियों पर चढ़ती रही, गड्ढोंको पार करती रही, और सुबह मुँह-अँधेरे जब वह अपने बच्चेकी किलकारी सुनकर उठी तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आया, बाहर वर्षा हो रही थी। बाहर वर्षा हो रही थी और लाजवन्तीको अपने-आपसे डर लगने लगा। खिड़कीमें खड़ी वह देर तक काँपती रही। रिमझिम-रिमझिम पड़ती बूँदोंको देखकर उसकी आँखोंमें छम-छम आँसू बरसते रहे।

और फिर उसने अपने बच्चेको तैयार किया, स्वयं तैयार हुई। इतनेमें वर्षा थम गई, वह अपने पतिको साथ लेकर मन्दिरकी ओर चल पड़ी।

मन्दिरसे लौटते हुए एक गोटा कहाँ, वह तो पूरे दस रुपयोंका सामान ख़रीद लाई।

फिर उसकी बहन और बहनोई आये। जिस दिन वे आये दिन भर वर्षा होती रही। अगले दिन भी वर्षा हो रही थी। उसकी बहन बहुत बेचैन होने लगी। उन्हें गाड़ी पकड़नी थी और वर्षा रुकनेका नाम न लेती थी।

लाजवन्तीको ऐसे लगता मानो वह कहेगी और वर्षा रुक जायगी। जैसे उसे बस संकेत ही करना हो। ज्यों-ज्यों उसकी बहन खीजती, लाजवन्तीको हँसी आती। उसका पति बार-बार अतिथियोंकी बेबसी पर लज्जित-सा होता। लाजवन्तीके कपोलोंसे जैसे मुसकराहटें फूट-फूट पड़तीं।

उनको ग्यारह बजेकी गाड़ीसे जाना था और अब नौ बज चुके थे। इस तरह सबको घबराया हुआ देखकर लाजवन्तीके मुखसे सहसा निकला, 'दस बजे तक वर्षा थम जायगी, फिर चले जाना।'

लाजवन्तीका पति कहता कि यह वर्षा थमनेवाली नहीं। उसकी बहन कहती वर्षाकी यह झड़ी तो शायद सात दिन तक न रुके। और उसका बहनोई इस कमरेसे उस कमरे तक, उस कमरेसे इस कमरे तक निरर्थक टहल रहा था। उसे कुछ समझमें न आ रहा था कि वह क्या करे, क्या न करे।

ठीक दस बजे वर्षा थम गई।

उसकी बहन और बहनोई खुशी-खुशी चले गये। इस बातपर किसीने ध्यान ही न दिया कि जैसे लाजवन्तीने कहा था, वर्षा पूरे दस बजे रुक गई थी।

कभी-कभी जब वह अपने बच्चेको सँवार रही होती, अपने पतिके कपड़े धो रही होती, अपने आंगनमें झाड़ू देती सामने गली तकको बुहारकर मुड़ रही होती, वर्षाके हो जाने और वर्षाके रुक जानेकी बात सोचकर लाजवन्तीको अपना-आप अच्छा-अच्छा-सा लगने लगता। अकेली अपने क्वार्टरकी खिड़कीमें बैठी कभी-कभी लाजवन्ती आकाशकी ओर देखती और उसे ऐसे लगता जैसे उसे देख-देख कर कोई हंस रहा हो, जैसे उसे कोई ऊपर बुला रहा हो। घर के काम-काजसे निबट कर हमेशा वह, मदमाती-सी, खिड़कीमें बैठी रहती।

इस प्रकार नशे-नशेसे भरपूर ज़िन्दगी एक मधुरताके साथ बीतती गई।

लाजवन्तीका बच्चा अब बड़ा हो रहा था। जब वह अपने वर्षा कर देनेवाले और वर्षा रोक देनेवाले भगवान्के ध्यानमें मग्न बैठी होती तो उसका बच्चा आकर कभी उसे तंग नहीं करता था, बाहर दालानमें अपने आप खेलता रहता था।

पर एक वस्तु जो कुछ दिनोंसे लाजवन्तीकी इस अलौकिक लगनमें विघ्न डाल रही थी वह था पड़ोसियोंका नया खरीदा हुआ रेडियो। सवेरे-दोपहर-सांझ हर समय वे रेडियो लगाये रखते।

झाड़ू देते हुए, नहाते हुए, रसोईमें काम करते हुए, कपड़े धोते हुए, बरतन साफ करते हुए, सोते हुए, सोकर जागते हुए, हर समय उसके कानोंमें रेडियोकी आवाज़ सुनाई पड़ती रहती। लाजवन्ती बहुत खीजती। बार-बार वह अपने कानों पर हाथ रखती, बार-बार अपनी आँखें बन्द करती। पर रेडियोकी आवाज़ तो जैसे सब पर्दे चीरकर आती रहती। कभी-कभी वह अपने मुँह पर हाथ रख लेती, कानोंमें उँगलियाँ दे लेती, पर रेडियोकी आवाज़ जैसे बलात् उसकी ओर दौड़ी आ रही हो। उसके अंग-अंगमें पोरु-पोरमें जैसे वह रचती जा रही हो।

और फिर लाजवन्तीको रेडियोके गाने अच्छे लगने लगे। बार-बार सुननेसे कई गीत तो उसे कंठस्थ हो गये, कई गीतोंकी वह मन-ही-मन में प्रतीक्षा करती रहती। अकेली खिड़कीमें बैठी वह कभी देर तक किसी नये सुने हुए गानेको बार-बार गुनगुनाती रहती। लाजवन्तीका बच्चा तोतले स्वरसे रेडियोके किसी गीत को गाने का यत्न कर रहा उसे बड़ा प्यारा लगता। लाजवन्ती हैरान होती, दूध देनेवाला आता, वह भी धीरे-धीरे रेडियोका कोई गीत गा रहा होता, सब्ज़ी देनेवाला आता, वह भी नाकमें कोई तर्ज़ गुनगुना रहा होता, कोई ऐसी तर्ज़ जो लाजवन्तीने रेडियो पर सुनी होती थी। और वही तर्ज़ नाली साफ़ करते समय जमादारिन भी सुबह-शाम गुनगुनाती रहती।

एक दिन किसी कामसे लाजवन्ती पड़ोसियोंके घर बैठी हुई थी। कितनी देर रेडियो पर गाना होता रहा। फिर लाजवन्ती ने किसीको सूचना देते हुए सुना—'आज अमुक-अमुक स्थान पर वर्षा होगी, बादल गरजेंगे, बिजली चमकेगी और यह भी सम्भावना है कि ओले भी पड़ें।'

वर्षाका एलान रेडियो पर सुनकर लाजवन्ती हैरान-सी रह गई। उसके हृदय पर एक धक्का-सा लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उससे किसीने मज़ाक किया हो। रेडियोवालोंको कैसे पता चल सकता है कि आज वर्षा होगी या नहीं होगी? यह कैसे हो सकता है? यह क्यों कर हो सकता है? और इन्हीं विचारोंमें डूबी हुई वह उस रात सो गई। अभी वह थोड़ी देर ही सो पाई थी कि उसकी आँख खुल गई। बादल बहुत ज़ोरसे गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी, आकाश जैसे टप-टप, टप-टप कर रहा हो। और अभी लाजवन्ती अपनी आँखें मल ही रही थी, उसे पूरा विश्वास भी नहीं हुआ था कि वर्षा शुरू हो गई।

उस सारी रात लाजवन्ती सो न सकी। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि उसे हो क्या रहा है। उसे एक टीस-सी अंग-अंगमें अनुभव होती।

और लाजवन्तीकी समझमें कुछ न आता। उसे अपना मन कभी खाली-खाली लगता कभी भरा-भरा।

इस प्रकार जीवन व्यतीत होता गया। एक पूनमको लाजवन्तीका बहुत जी चाहा कि वह मन्दिर जाये। वह सोचती कि यदि वर्षा हो जाय तो वह अपने पतिको मना ही लेगी! और सारी रात लाजवन्ती हाथ जोड़ती रही। सारी रात आकाशकी ओर देखकर प्रार्थना करती रही, पर तारे वैसे-के-वैसे ही झिलमिलाते रहे, चाँद वैसे-का-वैसा ही मुसकाता रहा, न बादल आये, न वर्षा हुई।

एक मास बीत गया।

अगली पूनमको लाजवन्तीको फिर अपना भगवान् याद आ रहा था। एक बवण्डर-सा उसके हृदयमें जैसे बार-बार उठता। और फिर वह रात भर प्रार्थना करती रही, माथा रगड़ती रही, मनौतियाँ मानती रही। पर आकाशकी आँखसे एक बूँद भी न टपकी।

हर साँझ लाजवन्ती पड़ोसियोंका रेडियो सुनती। हर रोज़ वह बोलता कि मौसम खुश्क रहेगा।

एक मास और बीत गया।

अगली पूनमको लाजवन्तीने न कुछ खाया, न कुछ पिया। सारा दिन सारी रात अपने मन-मन्दिरमें जैसे उसने एक ज्योति जगाये रखी, पर वर्षा न हुई बिलकुल न हुई।

उसकी पड़ोसिनें अगली सुबह अपने पतियोंके साथ हँसती-हँसती मन्दिर जा रही थीं, और लाजवन्तीका पति हर रोजकी तरह हँसता-बोलता उसके देखते-ही-देखते अपने काम पर चला गया। क्या मजाल है कि एक मिनट भी लेट हो जाय!

उस दिन आकाश पर खिले तारोंको देखकर लाजवन्तीने अपने मनसे कहा—'इस निगोडे भगवान्‌को न जाने क्या हो गया है?'

टीले और गड्ढे

चमेली इस कोठीमें ब्याही हुई आई थी।

पहले साल उसका पति छुट्टी पर अपने गाँव गया तो उसने चमेली-को देखा, दूसरे साल गया तो उसने रिश्तेकी बात चलायी और तीसरे साल उसे ब्याह लाया।

चमेलीका जन्म मथुराके एक गाँवमें हुआ था। वहीं पली, वहीं बड़ी हुई। लेकिन जब से वह पंजाब आई, लौटकर न जा सकी।

चमेलीको अपने पतिके साथ इस कोठीमें रहते कई साल बीत चुके थे। किरायेदार बदलते रहे, कोठीका माली वही रहा।

दिन-दिनभर चमेलीका पति फूलों और क्यारियों तथा मेंडोंकी दुनियामें खोया रहता। चमेली कभी चाँदीके सारे गहने पहनकर खिड़कीसे अपने घरवालेको देखती रहती, कभी किरायेदारके बच्चोंके साथ या उनकी माँके साथ बैठकर बातोंमें खो जाती।

कई किरायेदार अफ़सरोंने आँखों ही आँखोंमें चमेलीकी पाज़ेबोंकी झंकारकी सराहनाकी थी और चमेलीको यह बात बहुत भली लगी थी। चमेलीके खुले घेरेवाले लहंगेको कई अफसरोंकी पत्नियोंने मुड़-मुड़कर देखा था और चमेलीको यह बात भी बहुत भली लगी थी। चमेलीका साँवला रंग, दूधिया सफेद दाँत, चौड़ा माथा, काले नयन, कई किरायेदार अफसर उचक-उचक कर देखते रहते और चमेलीको यह बात बहुत भली लगती।

और इस प्रकार चमेलीका जीवन शान्त, अडिग, आनन्दापूर्वक व्यतीत होता रहा। फिर उस कोठीमें एक और किरायेदार आ गया।

चमेली हैरान थी कि ये नये किरायेदार कैसे थे। सरदार दफ्तर

जाता था। सवेरे वह अन्दरसे बाहर आता, मोटरमें बैठता और आँख झपकते ही ग़ायब हो जाता। रातको अँधेरा होनेपर वापिस आता। सरदारनी डाक्टर थी। कई बार सरदारके जानेसे पहले, कई बार सरदारके जानेके थोड़ा बाद, हस्पतालकी मोटर आ जाती और उसे ले जाती। दोपहरको वह वापिस लौटती, सफ़ेद कोट पहने, एक हाथमें रबड़की टूटी थामे, दूसरेमें अख़बार सम्हाले, हस्पतालकी मोटरसे निकलती और तेज़-तेज़ डग भरती कोठीके अन्दर चली जाती। एक बच्चा था। सवेरे स्कूलकी बस उसे ले जाती, शामको छोड़ जाती। घर आकर वह जल्दी-जल्दी दूधका प्याला पीता, एक टोस्ट खाता और खेलने निकल जाता। हर रोज़ अँधेरा पड़ जाने पर नौकर उसे बुलाकर लाते।

दोपहरके बाद जितनी देर सरदारनी अकेली रहती या तो कुछ पढ़ती या बुनती रहती या सफ़ाई करनेमें लगी रहती या फिर रसोईमें उलझ जाती। अमीर स्त्रियोंकी तरह अपने नौकरोंको या उनकी स्त्रियोंको अपने पास बिठाकर फ़ालतू बातें करनेकी उसे आदत न थी। चमेली बहुत दिन तक देखती रही, देखती रही। आख़िर वह एक दिन स्वयं ही नमस्ते कहते हुए बीबीजीके पास जाकर बैठ गई। पीछे धीरे-धीरे रेडियो चल रहा था। ऊपर छतका पंखा घूम रहा था। कुरसी पर बैठी हुई डाक्टरनी शान्त और स्थिर भावसे अपने पैरोंके नाखून साफ़कर रही थी, उनपर तेल पालिश लगा रही थी। बहुत देर तक चमेली वहाँ बैठी बातें करती रही। डाक्टरनी अपना काम भी किये जाती साथ-साथ बातें भी किये जाती। इसके बाद जब कभी चमेलीका जी चाहता, जब कभी अपने क्वार्टरकी तनहाई से उसका जी उचटता, वह ठुमक-ठुमक करती झिझकती, सकुचाती, सरदारनीके पास जा बैठती। एक बार आती और न जाने कब तक वहीं जमी बैठी रहती।

शामको जब बच्चा स्कूलसे लौटता और यदि चमेलीका दाव लग

जाता वह उसे फूलोंका लालच देकर अपने क्वार्टरकी ओर ले जाती और देर तक उसके साथ खेलती रहती।

यदि चमेली किसीके साथ बात नहीं कर सकी थी तो वह सरदार था। सरदारने उसकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा था।

जहाज़-सी बड़ी उसकी मोटर थी, जिसे नौकर धोते रहते, चमकाते रहते। जब दफ़्तर जानेका समय होता ड्राइवर मोटरको बरांडेके सामने लाकर खड़ी कर देता। हर रोज़ ठीक समय पर सरदार बाहर निकलता, मोटरमें बैठता और ड्राइवर उसे उड़ा ले जाता।

छुट्टीके दिन भी वह कोठीमें बने हुए दफ़्तरमें जा बैठता। वहाँ वह सरकारी काम करता रहता, या पढ़ता रहता, या मिलने वालोंसे भेंट करता रहता। बीच-बीचमें टेलीफोनकी घंटी बज उठती और वह देर तक अँग्रेज़ीमें बातें करता रहता। लाल रंगके लम्बे कोट और तिल्लेदार पट्टियोंवाले चपरासी बाहर उसके द्वार पर खड़े रहते। कोट पतलून नकटाइयाँ कसे दफ्तरके बाबू आते, कुछ लिखते रहते कुछ मशीन पर उंगलियाँ चला-चलाकर टाइप करते।

एक दिन जमादार दफ्तरकी सफाई कर रहा था। चमेली किसी बहानेसे भीतर चली आई। नीचे पूरे फर्शपर मोटा कालीन बिछा हुआ था। नंगे पैर चमेलीने अन्दर कदम रखा तो उसे लगा जैसे उसके पैर कालीनमें धँस रहे हों। जिस कुरसी पर सरदार बैठता वह उसी ओर घूम जाती जिस ओर बैठनेवालेको मुँह करना होता था। टाइप करनेकी मशीन, टेलीफोनका वह भाग जिसमें कोई बोलता और आवाज दूर-दूर पहुँच जाती, टेलीफोनका वह भाग जिसे कानके साथ लगाओ तो जाने कहाँ-कहाँकी आवाज़ सुनाई देने लग जाती। सामने मेज़पर रंग-रंग की कलमें थीं, पेंसिलें थीं, लट्टुओं जैसी स्याहीकी दवातें थीं।

उस दिन दोपहरको अपने क्वार्टरमें बैठी चमेली सोचती रही, सोचती रही। अपना चौका उसने नये सिरेसे लीपा पोता, अपनी

खटियाकी दावनको कसा, अपने पतिकी खटियाकी दावनको कसा। छतके एक कोनेमें जाने कबसे लगे हुए जालेको उतारा। सन्दूकके पीछे चप्पा चप्पा जमी हुई मिट्टीको झाड़ा। तुरई, लौकी और खीरेके एक नुक्करमें लटके हुए बीजोंको पिटारीमें सम्हालकर रखा। रोशनदानके शीशोंपर जमी हुई कई सालोंकी कालिखको साफ किया और फिर उसे वैसे-का-वैसा खुला छोड़ दिया। उस शाम उसने नलके नीचे बैठकर पैरोंकी मैलको मल-मलकर उतारा। अपने नाखूनोंको साफ किया, बालोंको तेल लगाकर कंघीकी, आँखोंमें काजल डाला, चाँदीके गहनोंसे लदी पाजेबें पहने अन्दर-बाहर छम-छम करती रही।

अगले दिन चमेली एक क्यारीमें बैठी साग तोड़ रही थी; पहले स्कूलकी बस आई बच्चेको लेकर चली गई, फिर सरदारकी मोटर निकली, फिर सरदारनी हस्पतालकी मोटरमें बैठकर चली गई। आखिरी मोटर अभी मुश्किलसे आँखोंसे ओझल हुई थी कि चमेलीने देखा, सामने सड़क पर माली आ रहा था। सिर पर वैसी-की-वैसी टमाटरोंकी टोकरी उठाये। अभी सवेरा ही था कि वह फ़ालतू टमाटरोंको बेचनेके लिए मंडीमें ले गया था। लेकिन मंडी वालोंने आज हड़ताल कर रखी थी और वह अपनी टोकरीको पाँच मील सिर पर उठाये वापस ले आया था जैसे सिरपर उठाये सवेरे ले गया था।

चमेलीका घर वाला बातें करते क्यारीमें ही आ बैठा और फिरदेर तक पति-पत्नी वहीं बैठे गप्पें मारते रहे।

चमेली चार गँदलें तोड़ती और फिर गप्पें मारने बैठ जाती। चमेलीका पति लकड़ीके टुकड़ेके साथ बार-बार क्यारीकी एक मुट्ठी मिट्टी उखेड़ता, बार-बार उसे दबाता और धीरे-धीरे अपनी घरवालीके सवालोंके जवाब दिये जाता।

यों वे बातें कर रहे थे कि उनका कुत्ता मोती सरदारके कुत्ते फ़रहादके साथ खेलता हुआ आया और दोनों सामने घासके मैदानपर

किलोल करने लगे। फ़रहाद, सरदारका कुत्ता, निवाड़के पलंग पर सोता था। उसके रेशमी बालोंको ब्रुशसे साफ़ किया जाता था। हर रोज़ उसका खाना अलग पकता था। एक बार जब फ़रहाद बीमार हो गया था तो मवेशियोंके हस्पतालका डाक्टर दिनमें दो-दो बार इस कोठीके चक्कर काटता था। वही फ़रहाद मालीके कुत्तेके साथ खेल रहा था, जैसे माँ जाये खेलते हैं। एक दूसरेके साथ लाड कर रहे थे। एक दूसरे-की गरदनमें गरदन डालते थे। एक दूसरेको नीचे लिटाकर ऊपर लेटते थे। मिलकर गिलहरियोंके पीछे दौड़ते थे और फिर खेलते हुए लौट आते थे। आकर फिर किलोल करने लग जाते थे।

चमेलीको याद आया कि एक बार फ़रहाद अपने बरतनमें खा रहा था कि मोती उसकी ओर गया। फ़रहादने तो एक ओर हटकर मोतीका स्वागत किया, पर पास बैठे हुए नौकरने मोतीको ज़ोरसे ठोकर दे मारी थी। और उस दिनसे मोती बुरी तरह खाँसने लगा था।

अभी पति-पत्नी क्यारीमें बैठे इधर-उधरकी बातें कर रहे थे कि सरदारनी काम करके हस्पतालसे वापस भी आगई।

एक बार रविवारके दिन चमेली बाहर घासके मैदानमें बूटी निकाल रही थी कि सरदारका कोई मित्र उससे मिलने आया। इस मित्रकी मोटर सरदारकी मोटरसे एक बालिश्त लम्बी थी। देर तक वे गोल कमरेमें पर्दोंके पीछे बैठे बातें करते रहे। कुछ उनके खानेके लिए अन्दर गया, कुछ उनके पीनेके लिए अन्दर गया। और थोड़ी देर बाद वे बाहर निकले। मोटरमें बैठनेसे पहले सरदार अपने मित्रको अपना बगीचा दिखाने लगा। गुलाबके काली पत्तियोंवाले फूल, रंग-बिरंगी मोटी-मोटी गुलदाऊदियाँ, तरह-तरहके स्वीट पीके फूल, इतना बड़ा घासका मैदान जिसमें सरदार कह रहा था, हर रोज़ बूटीको साफ किया जाता था। और यों बातें करते-करते सरदार और उसका मित्र चमेलीके पाससे गुज़रे। चमेलीने उठकर हाथ जोड़े और नमस्ते की। पर सरदार अपनी

घासकी, अपने फूलोंकी प्रशंसा करता गुज़र गया। चमेलीकी ओर किसी ने न देखा।

चमेली अपने सरदारकी हल्की नीली पगड़ीकी ओर देखती रही, उसके गहरे नीले सूटकी ओर देखती रही, उसके चमचम करते काले बूटोंकी ओर देखती रही और वे बहुत दूर निकल गये।

सरदारका बच्चा कभी कहीं घूमता-फिरता नौकरोंके क्वार्टरोंकी तरफ आ जाता तो चमेली देर तक उसे बातोंमें उलझाये रखती। छोटी-छोटी बातें, उसके खानेके बारेमें, उसके बस्तोंके बारेमें, उसकी माँ के बारेमें, उसके बापके बारेमें, पूछती रहती। और बच्चा भी चमेलीके साथ बातें करता रहता, जब तक कि उसे कोठीके अन्दरसे दो चार बार आवाज़ न पड़ जाती।

फिर चमेलीने अपने क्वार्टरके सामने नीमपर झूला डाला। जिस दिनसे यह झूला डाला गया, स्कूलसे आकर बच्चा सारी-सारी साँझ झूलेसे चिमटा रहता। चमेली कभी उसे झुलाती, कभी क्वार्टरकी दहलीज़ पर बैठी गोल गुदगुदे गालोंवाले बच्चेको देखती रहती।

सरदारको जब बच्चेके इस शौककी खबर मिली तो घासके मैदानमें एक ओर नई किस्मका झूला डलवा दिया गया। इस झूलेपर बच्चा अपने मित्रोंके साथ झूलता रहता और उसने नौकरोंके क्वार्टरोंकी ओर जाना छोड़ दिया।

उस दिन रविवार था। सर्दियोंके दिन थे। धूप खिली हुई थी। सरदार बाहर घासके मैदानमें आ बैठा। उसके आनेसे पहले एक रंग-बिरंगा छाता लगाया गया। दरी बिछायी गई। एक ओर एक पर्दा लाकर रखा गया और सरदार कुरसी घुमाकर कभी छातेकी छायामें हो जाता, कभी बाहर निकल आता। मोटरोंमें बैठे मिलनेवाले सदाकी तरह उससे मिलने आते रहे और वह वैसे-का-वैसा उनसे धीरे-धीरे बातें करता रहा।

अपने क्वार्टरकी दहलीज़ पर बैठी चमेली देर तक घासके मैदानकी ओर देखती रही।

फिर उसने अपने घरवालेसे पूछा कि क्या कभी उसने सरदारके साथ बातकी थी।

उसके घरवालेने कभी सरदारके साथ बात नहीं की थी।

फिर उसने अपने घरवालेसे पूछा कि क्या कभी उसने अपने सरदारकी आवाज़ सुनी थी।

उसके घरवालेने कभी सरदारकी आवाज़ नहीं सुनी थी।

हाँ, एक बार जब माली उसके दफ़्तरमें मेज़पर फूल सजा रहा था सरदारने अख़बारसे आँखें उठाकर मालीकी ओर देखा था और फिर अखबारका पन्ना पलटा था। चमेली कहती कि सरदारने पन्ना पलटनेके लिए आँख उठाई थी, माली कहता कि सरदारने प्रशंसा भरी नज़रसे मालीकी ओर देखा था, विशेष रूपसे उन फूलोंको निहारा था। मालीके फूल भी तो ऐसे थे कि सारी सिविल लाइनमें ऐसे फूल किसीकी कोठीमें नहीं खिले थे।

और फिर देर तक चमेली और उसका घरवाला अपने फूलोंकी बातें करते रहे। चमेली अपने घरवालेके हाथोंकी सफाई पर हैरान रह जाती। कितनी बरकत थी उसके हाथोंमें! जो बीज भी वह कभी बोता, समयसे पहले चाहे देरसे, वह ज़रूर फूटता, ज़रूर बढ़ता, ज़रूर फलता-फूलता। और चमेलीको याद आते अपने बाबाके बोलः किसानके हाथमें बरकत होनी चाहिए और यह बरकत आती है पवित्रतासे, सचाईसे, सच्चे जीवनसे। और चमेली खुश थी। उसका घरवाला देवताओं जैसा इन्सान था। न कभी उसने शराब मुँहसे लगाई थी, न कभी बीड़ी पी थी, न कभी वह औरोंकी तरह आधी-आधी रात तक बाहर रहा था।

चमेली खुश थी, बहुत खुश।

चमेलीके इस शान्त स्थिर जीवनमें कभी-कभी कोई झुंझलाहट-सी उठती। कभी-कभी जब उसका जी चाहता कि सरदारनीके पास बैठकर बातें करे और वह सात पर्दोंमें भीतर कहीं छिपी होती। कभी-कभी जब उसका जी चाहता कि सरदारके बच्चेको बाहोंमें लेकर चूमे, और वह उसके उजले रेशमी वस्त्रोंको देखकर, झिझक जाती, रुक जाती। कभी-कभी जब वह पाज़ेबें पहने छम-छम करती सरदारके पाससे गुज़रती, कभी जब वह घासके मैदानसे बूटी निकाल रही होती और सरदार उसके पाससे गुज़रता, उसका जी चाहता कि एक बार नज़रों ही नज़रोंमें सरदार उसके कामकी प्रशंसा करे, उसके घरवालेको अच्छा कह दे, नये खिले फूलोंके बारेमें पूछ ले।

पर सरदार कुछ इतना अलग-अलग, कुछ इतना ऊँचा-ऊँचा, कुछ इतना चुप-चुप, कुछ इतना दूर-दूर था कि चमेलीकी समझमें कुछ न आता।

एक बार बाहर घासके मैदानमें बैठकर सरदारको इतना रस आया कि हर रविवारको, हर छुट्टीवाले दिन, वह बाहर ही बैठता। किसीसे मिलना होता तो वहीं मिल लेता। हर रविवारको, हर छुट्टीवाले दिन, रंग-बिरंगा छाता लगाया जाता, दरी बिछाई जाती, पर्दा रखा जाता और सरदार कुरसी घुमाता कभी छातेके नीचे हो जाता, कभी बाहर धूपमें आ जाता।

और चमेली हैरान होती रहती कि सरदार कचनारके नीचे क्यों नहीं बैठ जाता था। कचनारके नीचे छायाकी छाया थी, धूपकी धूप, पर्देका पर्दा। पास ही फूलोंकी क्यारियाँ थीं। कचनार पर रंग-रंगके पंछी आकर बैठते थे।

चमेली हैरान होती रहती, हैरान होती रहती।

कई बार चमेली स्वयं कचनारके नीचे जा बैठती। अपने घर वालेको बुला-बुलाकर पूछती रहती। जाड़ेकी किसी दोपहरको कचनारके नीचे

बैठनेका कितना मजा था! और उसका घरवाला चमेलीकी हाँ-में-हाँ मिलाता रहता।

उसी जाड़ेमें तब होलीकी छुट्टी थी। लोग कई दिनसे होली मना रहे थे। छुट्टी विशेष रूपसे उस दिन थी। सरदार सदाकी तरह छुट्टीके दिन बाहर आ बैठा। छाता सदाकी तरह लगाया गया, पर्दा सदाकी तरह रखा गया, दरी सदाकी तरह बिछायी गई। चाहे छुट्टी थी पर सरदार सवेरेसे अपने काममें व्यस्त था। कभी कुछ पढ़ने लगता, कभी लिखने लगता, कभी मुलाकाती आ जाते।

चमेलीका घरवाला सवेरेसे रंगकी पुड़िया बाँधकर कहीं बाहर चला गया था। वह अभी सोकर उठा ही था कि चमेलीने पहलेसे घोलकर रखे हुए रँगोंसे उसे लथ-पथ कर डाला। और वह हँसता-खेलता वैसे-का वैसा बाहर निकल गया था।

चमेली अपने क्वार्टरमें खड़ी सामने सड़कपर होलीकी रौनक देखने लगी। बाहरसे साइकिलोंपर दूध लेकर आते ग्वालोंको खड़ा कर लिया जाता और वे हँसते-खेलते रंग डलवाकर आगे निकल जाते। कइयोंके कपड़े पहले ही रंगे होते, उनपर और रंग डाला जाता। जो जान-बूझकर फटे-पुराने कपड़े पहने नज़र आते, उनपर रंगमें मिलाये तेलकी पिचकारियाँ भर-भरकर छोड़ी जातीं। एक ट्रक आया। लड़कोंने हाथ देकर ट्रकको खड़ा कर लिया। पहिले ड्राइवरको बाहर निकालकर रंगा गया, फिर रंगकी बालटियाँ उठाये, पिचकारियाँ सँभाले, लड़के ट्रकपर चढ़ गये। और फिर वे चलते हुए ट्रकके ऊपरसे हँसते-गाते राहगीरोंपर रंगकी पिचकारियाँ छोड़ने लगे। सड़कसे एक टोली जाती, दूसरी आ जाती। तरह-तरहका शोर करते लोग एक मुहल्लेसे निकलते, दूसरे में घुस जाते। जो भी मोटर गुज़रती उसके सबके सब शीशे बन्द होते। एक ताँगा आया जिसमें सफेद कपड़े पहने एक लालाजी और उनकी ललाइन बैठी थीं। ललाइन खीजती रही, नाराज़ होती रही, गालियाँ

देती रही, लड़कोंने लालाजीको ताँगेसे उतारकर रंगोंसे नहला ही दिया और जब ताँगा चला तब ललाइनपर भी पिचकारियाँ छोड़कर उसके रेशमी सूटका नाश कर डाला। फिर एक पार्टी ढोलकियाँ और मजीरे बजाती नाचती-गाती आई। जो वस्त्र पहने थे, उनके वस्त्र कई-कई रँगोंसे रँगे थे, जो नंगे थे उनके शरीरपर कई-कई रंग मले हुए थे। और अभी तो वे बराबर एक दूसरेपर रंग उँडेल रहे थे, पाससे गुज़रने वालोंको रंग रहे थे। ढोलकवाला ज़ोर-ज़ोरसे थप-थपाता, मंजीरेवाले ज़ोर-ज़ोरसे मजीरे बजाते, नाचनेवाले नाच-नाचकर बेहाल होते। गानेवालोंके गाते-गाते गले बैठे जा रहे थे। फिर भी लोग गा रहे थे, फिर भी लोग नाच रहे थे, फिर भी लोग हँस रहे थे, फिर भी लोग खेल रहे थे।

और अपने क्वार्टरकी दहलीज़पर खड़ी एकाकिनी चमेलीके हाथोंको कुछ-कुछ होता, उसकी बाहें जैसे मचल उठीं। उसके क्वार्टरमें रंगकी बालटी भरी रखी थी, गुलालकी पुड़ियाँ पड़ी थीं। वह यह नहीं समझ पा रही थी कि वह किसपर रंग डाले, किसके साथ होली खेले। सामने घासके मैदानमें सरदार बैठा था, सात रंगोंवाले छातेके नीचे, कीमती दरीपर, रेशमी पर्देकी ओटमें। सरदारनी और उसका बच्चा सवेरेसे भीतर घुसे हुए थे। चिकोंके पीछे द्वार, द्वारोंके पीछे पर्दे, पर्दोंके पीछे कमरे, कमरोंके पीछे और कमरे, जहाँ चमेलीकी पहुँच न थी। चमेली सोचती रही, सोचती रही। उसे यों लगता कि सरदार सरदारनी और उनका बच्चा जैसे कोई टीले थे, अचल, अटल, दूर, उसकी पहुँचसे दूर। जैसे चमेली और उसका घरवाला गड्ढे थे जो भरनेमें ही नहीं आते थे। और सामने सड़कपर लोग नाच-नाचकर गा-गाकर, रंग उछाल-उछालकर बेहाल हो रहे थे। आने-जानेवालोंपर रंग डाल-डालकर थक जाते तो एक-दूसरेपर रंग डालने लगते। आपसमें रंग डाल-डालकर थक जाते तो हवामें पिचकारियाँ छोड़ते। ढोरोंको पानी पिलानेवाली हौदीमें उन्होंने रंग घोल लिया था। बदमस्त,

नशेमें बेहाल लोगोंको होली खेलते देखकर चमेली जैसे किसी हिलोरमें आ गई। उसकी आँखें किसी सरूरसे भर गईं। एक क्षणके लिए वह अपने क्वार्टरमें गई। और फिर वैसे-का-वैसा द्वार खुला छोड़ बाहर निकल आई। अगले ही क्षण चमेलीने घासके मैदानमें रेशमी पर्देके पीछे सात रंगके छाते तले पीठ किए हुए सरदारको कन्धेसे पकड़ कर उसके मुँहपर, गरदनपर, सीनेपर, पगड़ीपर, कमीज़पर, गुलाल ही गुलाल कर दिया। चमेली पूडेमेंसे रंग लेकर मलती गई, मलती गई और जब उसका रंग ख़त्म हुआ तो वह दौड़ती हुई, हाँपती हुई फूले हुए साँसके साथ अपने क्वार्टरमें जा चित्त अपनी खटिया पर गिर पड़ी।

श्यामसुन्दर

'हमारे यहाँ बहुतसे नौकर रहे, पर श्यामसुन्दर जैसा नौकर हमें पहली बार मिला। इसपर हर तरहसे विश्वास किया जा सकता है। यह हर काम जानता है और बहुत समझदार है। बिना कहे ही काममें जुटा रहता है। हमारी बदली हो गई है और श्यामसुन्दर अपने घरसे दूर नहीं जाना चाहता।'

'श्यामसुन्दर जैसा होशियार और योग्य नौकर भाग्यसे ही मिलता है। हमारे यहाँ तो यह परिवारके आदमीकी तरह रहा है। हर चीज़ खुद निकालता था, हर चीज़ खुद रखता था, कभी कोई चीज़ इधर-उधर नहीं हुई। इसका विशेष गुण है इसका हँसमुख स्वभाव। हम परदेश जा रहे हैं और हमें सबसे अधिक खेद श्यामसुन्दरको पीछे छोड़ जानेका है।'

'श्यामसुन्दरको हमने नौकर कभी भी नहीं समझा। अब बिछुड़ने लगा है तो जैसे कोई घरका आदमी जा रहा हो।'

बड़े-बड़े अफ़सरोंके ऐसे अनेक प्रमाणपत्र श्यामसुन्दरके पास थे। कोई पुलिसका अफ़सर था, कोई सेनाका। हर कोई उसका प्रशंसक था। हर कोई उसकी ईमानदारीका कायल था। उसके हंसमुख स्वभावकी हर कोई सराहना करता था।

बाबू रामभरोसे और उसकी पत्नी दोनों खुश थे कि उन्हें इतना अच्छा नौकर मिल गया। 'अच्छा नौकर सौभाग्यसे मिलता है', उठते-बैठते बाबू रामभरोसेकी पत्नी दयावती कहती रहती।

श्यामसुन्दरने घरके सब काम संभाल लिये थे। पिछले बारह वर्षोंमें एक-एक वर्षके अन्तरसे जनमे दयावतीके बच्चोंके काम, गायके काम,

जिसे बाबू रामभरोसेने कमेटीसे चोरी आँगनमें बाँध रखा था, चौके चूल्हेका काम, कामसे अधिक स्वच्छताका विचार, जो दयावतीकी सनक थी, अड़ोस-पड़ोसकी बेगारें, और भी अनेक काम। श्यामसुन्दर सवेरे मुँह अंधेरे उठता और रातको सबके सो जानेके बाद सोता।

बाबू रामभरोसेके भीतरका सुपरिण्टेण्डेण्ट सोचता—क्या हुआ यदि श्यामसुन्दरका वेतन पाँच रुपयें अधिक है, हमारे घरका काम पहले दो नौकरोंसे भी नहीं संभलता था। दयावती कुछ इस तरह सोचती—एक नौकरका वेतन बचा, पाँच रुपये कम सही, एक नौकरकी रोटी बची, आज कलकी मँहगाईमें तनख़्वाहसे ज़्यादा तो नौकरकी रोटीपर ख़र्च होता है, ये कलमूँहे खाते भी तो कितना हैं।

सवेरे, भोरसे पहले ही, श्यामसुन्दर उठता। अंगीठी जलाता। जितनी देर अंगीठी जलनेमें लगती, वह गायको चारा डालता, दूध दोहता। फिर अंगीठी पर दूध रख कर झाड़ू-बुहारी शुरू कर देता। एक आँख चूल्हेकी ओर होती, दूसरी झाड़ूमें। इससे पहले कि कोई घरवाला जागता, वह इस तरहके बहुतसे काम कर डालता। फिर चाय-पानी, दूध-दही, रोटी-भाजी, बच्चोंको तैयार करना, बाबूजीकी साइकिल की झाड़-पोंछ, दयावतीकी पूजाके लिए पड़ोसकी फुलवारीसे फूल तोड़ कर लाना। हर रोज़ फुलवारीके मालीका नाराज़ होना, हर रोज़ श्यामसुन्दरका मालीके घुटनोंको हाथ लगाकर क्षमा माँगना, उसकी ठोड़ीको छूकर उसकी उदारताको उकसाना। यों दोपहर हो जाती। दोपहरके बाद बरतनोंका एक अम्बार साफ़ करनेके लिए पड़ा होता। बरतनोंसे छुट्टी मिलती तो बच्चे स्कूलसे पढ़कर आ गये होते। फिर बरतन जूठे होने शुरू हो जाते। फिर रातके भोजनके लिए चूल्हे जलाये जाते। फिर भोजन तैयार होता। फिर थाल परोसे जाते, फिर दालका सबके लिए पूरा करना, फिर हाथ रोककर सब्ज़ी बाँटना, फिर लड़कियोंसे चोरी लड़कोंको मक्खन खिलाना, बीबीजीके लिए मलाई बचाकर

रखना। यों रात हो जाती। बरतन माँजता, रसोई धोता, चूल्होंको लीपता-पोतता, श्यामसुन्दर कहीं आधी रातको छुट्टी पाता। थका हारा जाकर खाटपर गिर पड़ता, लेटते ही बेसुध सो जाता।

'श्यामसुन्दर !' जब कभी दयावती नौकरको पुकारती, उसकी आवाज़में वह सम्मान होता जो एक सन्तुष्ट मालकिन अपने सेवकको देती है। उठते-बैठते वह कहती रहती, 'श्यामसुन्दर' कैसा भला नाम है, जितनी बार नौकरको बुलाओ उतनी बार भगवान्‌का नाम मुँहसे निकलता है। और वह हर छोटी-छोटी बातपर, हर छोटे-मोटे कामके लिए नौकरको पुकारती रहती। श्यामसुन्दर भी कभी न ऊबता, कभी न खीजता, प्रसन्न चित्तसे वह दयावतीका हर काम करता रहता।

श्यामसुन्दरसे उसके मालिक और मालकिन दोनों खुश थे, श्यामसुन्दरके मालिकके पड़ोसी उससे खुश थे, श्यामसुन्दरके मालिकके अतिथि उससे खुश रहते। पर एक बात श्यामसुन्दरको कुछ दिनोंसे अजीब-सी लग रही थी, और कभी-कभी जब उसे उसका ध्यान आता तो उसके मुँहका ज़ायका कुछ ख़राब-सा हो जाता।

बात यह थी कि जबसे श्यामसुन्दर इस घरमें आया, वेतनके मामलेमें कुछ गड़बड़ हो रही थी। पहले महीनेका वेतन बाबूजीने ठीक पहली तारीखको दे दिया था। लेकिन दूसरे महीनेका वेतन दस तारीखको मिला। और फिर कोई बीस तारीखके बाद दयावतीने पाँच-पाँच, सात-सात करके उस महीनेकी सारीकी सारी तनख़्वाह और पिछले महीनेके बचे हुए कुछ रुपये भी वापस ले लिये थे। श्यामसुन्दर सोचता कोई बात नहीं, अन्दर पड़े पैसे मेरा भी क्या सँवार देते। अगले महीने, वह सोचता, उसके सारे पैसे एक साथ मिल जायेंगे और वह अपनी बूढ़ी माँके नाम गाँवमें भिजवा देगा।

अगला महीना आया। पहली तारीख़, पाँच तारीख़, दस तारीख़, पन्द्रह तारीख़, बीस तारीख़। श्यामसुन्दर मालिकके मुँहकी ओर

देखता रहा, मालकिनके मुँहकी ओर देखता रहा, और महीना बीत गया। श्यामसुन्दर दिल लगाकर काम करता, जान डालकर काम करता, पाई-पाईकी बचत करता, मालिकका पैसा-पैसा बचाता रहता। अड़ोस-पड़ोसवाले, गली-मोहल्लेवाले, बाज़ारके दुकानदार, जिनसे वह घरके लिए चीज़ें खरीदता, सभी श्यामसुन्दरकी ईमानदारी और अपने मालिकके लिए दर्दकी सराहना करते न थकते।

दयावतीने सारा घर नौकरके हवाले कर रखा था। जो चाहे निकाले, जो चाहे डाले, न किसी चीज़को उसने ताला लगाया था, न कोई चीज़ अपने अधिकारमें रखी थी। और तो और, उसके गहनोंके ट्रंककी चाबी भी उसी गुच्छेमें होती जो दिन भर श्यामसुन्दरके पास रहता। कई बार दयावती गुसलखानेमें अपनी अंगूठी भूल जाती, कई बार बाबू रामभरोसे अपनी घड़ी उतार कर इधर-उधर रख देता और श्यामसुन्दर संभाल-संभाल कर उनकी चीज़ें उन्हें देता रहता।

एक और महीना शुरू हुआ। अभी तक श्यामसुन्दरको वेतन नहीं मिला था। कभी श्यामसुन्दरको अपने मालिकों पर अफ़सोस होता, और कभी तरस आता : बेचारोंके ख़रच इतने हैं, तनख़ाह वही नपी-तुली है, पिछले महीने बच्चोंकी परीक्षाके प्रवेश-पत्र भरने थे, उससे पिछले महीने बाबूजीने नयी साइकिल खरीदी थी, और उससे पिछले महीने घरमें बीमारी रही थी।

इस महीनेकी भी पाँच तारीख़ बीत गई और श्यामसुन्दरको तनख़्वाह नहीं मिली। श्यामसुन्दरकी कमीज़ घिस गई थी और उसे एक नयी कमीज़ बड़ी ज़रूरी बनवानी थी। एक बार और घुलनेसे कमीज़के चिथड़े उड़ जानेकी आशंका थी। और कमीज़ कलसे उसे मैली-मैली लग रही थी।

श्यामसुन्दरने एक दिन और प्रतीक्षा की। अगले दिन जब बाबूजी

घर आये तो बेबस होकर उसने बाबूजीसे दस रुपये माँगे। 'भई, पैसे तो हैं नहीं, कुछ दिन और ठहर जाओ।' बाबूजीने कहा और सुबहका अख़बार उठाकर पढ़ना शुरू कर दिया।

श्यामसुन्दरने अपनी कमीज़की तरफ़ मालिकका ध्यान दिलाया। लेकिन वह बराबर अख़बार पढ़ता रहा।

श्यामसुन्दरने कभी इस तरह मिन्नत-मनौअल नहीं की थी। उसे बहुत बुरा लगा। फिर उसने सोचा कि मालिकके पास रुपये नहीं थे तो वह कहाँसे पैदा कर देता, और श्यामसुन्दरने सब्र कर लिया।

कोई आध घण्टेके बाद चुपचाप साथ वाले कमरेमें काम करते हुए श्यामसुन्दरने देखा कि मालिक अपने कपड़े उतार रहा है। पहले बाबू रामभरोसेने कोट उतारा, फिर कोटकी जेबसे नोटोंकी एक गड्डी निकालकर कपड़ोंकी अलमारीके एक कोनेमें रख दी।

श्यामसुन्दरकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। जिस कपड़ेकी वह तह कर रहा था उसके हाथसे फिसलकर नीचे गिर गया। और इससे पहले कि उसे पता लगे कि वह क्या कर रहा है श्यामसुन्दर घरके बाहर पिछवाड़ेके आँगनमें टहल रहा था।

श्यामसुन्दर सोचता रहा, सोचता रहा। फिर उसे भीतरसे आवाज़ आई। फिर एक और आवाज़। दयावती झुँझला रही थी। श्यामसुन्दर जैसे हुक्ममें बँधा हुआ कमरेके अन्दर चला गया। एक काम, एकमें से एक और काम, उसमेंसे फिर एक और काम। यों साँझ हो गई।

उस साँझ आलमारीमें से कोई चीज़ निकालते हुए श्यामसुन्दरने देखा कि एक कोनेमें कपड़ोंके नीचे सौ-सौके नोट छिपाये रखे हैं। पता नहीं क्यों, आज पहली बार उसके दिलमें आया कि वह देखे तो सही कि मालिककी जेबमें कितने पैसे थे, जब उसने उसकी चार महीनोंकी तनख़्वाह रखकर भी दस रुपये देनेसे इन्कार कर दिया था। श्यामसुन्दरने नोटोंकी गड्डीको गिना। सौ-सौके पूरे आठ नोट थे।

सौ-सौके पूरे आठ नोट ! श्यामसुन्दरने नोटोंकी गड्डीको हाथमें पकड़कर ज़ोरसे भींचा। फिर वैसे-के-वैसे सब नोट अलमारीमें रख दिये। लेकिन उस जगह नहीं जीहाँसे उसने गड्डीको उठाया था। श्यामसुन्दरने जान-बूझकर आलमारीका खाना भी बदल दिया और कोना भी।

उस साँझ घरके कामोंमें दौड़-धूप करते हुए जब श्यामसुन्दरको अपनी इस हरकतका ख़्याल आता तो एक क्षणके लिए उसके ओठों पर मुसकराहट खेल जाती।

साँझ ढल चुकी थी, जब श्यामसुन्दरने सुना कि बहुत घबरायी हुई आवाज़में बाबूजीने दयावतीको कमरेमें बुलाया। फिर कुछ देर मौन रहा। फिर उसी तरहकी घबरायी हुई आवाज़में बड़े लड़केको बुलाया गया। फिर कुछ देर मौन रहा। और फिर श्यामसुन्दरको बुलाया गया। दयावती स्वयं बुलाने आई।

'यहाँ आलमारीमें मैंने आठ सौ रुपये रखे थे,' बाबू रामभरोसेने श्यामसुन्दरसे पूछा। घबराहटमें सूखे जा रहे गलेसे आवाज़ नहीं निकल रही थी।

श्यामसुन्दर अवाक्-सा मालिककी ओर एक टक देखता रहा। उसे क्या मालूम था, वह तो बेचारा नौकर था जिसने सारी उम्र ईमानदारीसे काम किया था। उसके पास तो बड़े-बड़े अफ़सरोंके प्रमाण-पत्र थे।

'पर आप तो कहते थे कि आपके पास पैसे हैं ही नहीं,' कुछ देर बाद धीरेसे श्यामसुन्दरने कहा।

थोड़ी देर इसी तरह खड़ा रहनेके बाद श्यामसुन्दर रसोईमें चला गया और पहलेकी तरह खाना बनानेमें जुट गया।

नौकर कैसे पैसे चुरा सकता है ! दयावती सोचती—अभी कलकी बात ही तो थी जब झाड़ू बुहारते हुए उसका झुमका श्यामसुन्दरको

मिला था। दयावतीको तो पता भी नहीं था कि वह कब गिरा था, कहाँ गिरा था। नौकर कैसे पैसे चुरा सकता था? बाबू रामभरोसे सोचता—इतने बड़े-बड़े आदमियोंने उसकी प्रशंसा की थी। हज़ारों रुपये लोगोंके घरोंमें पड़े रहते हैं।

और पति पत्नीकी ओर देखता, पत्नी पतिकी ओर देखती। घरमें जैसे मातम छा गया। मालिक चुप। मालकिन चुप। बड़ा बच्चा चुप। छोटा चुप। बाहरसे खेलकर घर आये सभी बच्चे चुप थे।

बाबू रामभरोसे सोचता कि पुलिसमें रिपोर्ट कर दे। लेकिन पुलिसको क्या कहेगा? उसको किस पर सन्देह था? घरमें घरवाले थे और नौकर था। नौकर, जिसे घरवालोंसे अधिक घरका दर्द था, जिसकी ईमानदारीका बखान उठते-बैठते पति-पत्नी करते रहते थे, जिसकी सचाईके बारेमें गली-मुहल्ले, अडोस-पड़ोस जान-पहचान वाले सब सौगन्ध खा सकते थे।

दयावती बार-बार अलमारीके उस ख़ानेको टटोलती, कभी कपड़ोंके नीचे देखती तो कभी ऊपर। अलमारीके पीछे लकड़ीमें एक छेद था, उसने सोचा शायद कोई चूहा ही नोटोंको घसीटकर ले गया हो। फिर सारा परिवार चूहोंके बिलोंको खोजने लगा। हर कोना, हर सुराख़ उन्होंने खोद डाला। लेकिन सौ-सौके आठ नोट, बाबू रामभरोसेके गाढ़े पसीनेकी कमाई, इतनी बड़ी रकम न मिलनी थी, न मिली।

रातको खानेकी मेज़पर मालिक और मालकिन भोजनकी ओर देख भी न सके। कभी अन्दर बैठते, कभी बाहर, उन्हें चैन न आता। बहुत रात बीत गई। श्यामसुन्दर मालिकोंके मुँहको देख-देख आखिर रसोईका दरवाज़ा बन्द करके आँगनके सामने एक कोनेमें अपनी खाटपर जा लेटा।

सामने दालान, दालानवाला कमरा, बाहर बिछी हुई मालिक और मालकिनकी चारपाइयाँ, श्यामसुन्दरको सब नज़र आ रहा था।

श्यामसुन्दर देख रहा था, बार-बार मालकिन देवीकी मूर्तिके आगे माथा टेक रही थी, बार-बार बाबू रामभरोसे मन्नतें मनाता और हाथ जोड़-जोड़ अपनी भूलोंके लिए क्षमा-याचना करता।

मालकिन कभी बाहर आकर अपनी चारपाईपर बैठती, फिर धोती के पल्लेसे पंखा करती आँगनमें टहलने लगती। उसके भीतर जैसे आग जल रही थी। बार-बार वह ठंडी गहरी साँस भरकर कहती, 'हाय, न बेटीके काम आया, न बेटेके काम, पूरा आठ सौ रुपया!'

बाबू रामभरोसे बार-बार दालानवाले गुसलख़ानेमें जाता, बार-बार फ़्लशकी आवाज़ आती।

दयावती कहती कि वह गाय बेच देगी। बाबू रामभरोसेसे कहता कि वह साइकिलके बिना गुज़ारा कर लेगा; दफ़्तर पैदल जाया करेगा, दफ़्तरसे पैदल आया करेगा। क्या हुआ यदि अपने देशमें गर्मियोंमें गर्मी ज़्यादा पड़ती है और सर्दियोंमें सर्दी ज़्यादा होती है, आख़िर साइकिलके बिना कोई मर थोड़े जाता है।

सामने सो रहे बच्चोंमेंसे मुन्नी बार-बार ऊँचे-ऊँचे खर्राटे लेती, बार-बार दयावती उसपर नाराज़ होती। एक बार तो जाकर उसे झकझोर भी आई। बाबू रामभरोसे अपनी पत्नीको जैसे काटनेको दौड़ता, बात-बातपर खीझता। कमज़ोरीके कारण उसकी आवाज़ डूबती-सी जा रही थी।

शहरके घड़ियालने एक बजाया, दो बजाये। बाबू रामभरोसे और दयावती अभी तक जाग रहे थे। बाबू कभी कुर्सीपर बैठता। कभी दालानकी सीढ़ियोंपर बैठता। कभी बाहर चारपाईपर आ बैठता। कभी फिर टहलने लगता। दयावती अपने पतिसे पूछती कि आप सोते क्यों नहीं। बाबू रामभरोसे अपनी पत्नीसे पूछता कि तुम क्यों नहीं लेटतीं, फिर बीमार पड़ गई तो डाक्टरोंके यहाँ दौड़ना पड़ेगा।

दयावती कहती, 'ज़रूर किसी चूहेकी करतूत है।' बाबू रामभरोसे कहता, 'इससे तो अच्छा था कि कोई चुरा ही लेता, किसी ग़रीबके काम तो आते वे रुपये।'

'हाय क्यों कोई कलमुँहा चुराता?' दयावती कड़ककर कहती, 'क्या कोई हरामकी कमाई थी हमारी?'

और पति-पत्नी उलझ जाते।

'पर आपने अलमारीमें इतनी बड़ी रकम रखी ही क्यों थी?' दयावती पूछती।

'याद तो करो शायद कहीं और जगह रख दिये हों,' दयावती फिर कहती।

'हमेशा कोट उतार कर उसे आप मेरे हवाले कर देते हैं। आज क्या मुसीबत आ गई थी?' दयावतीका क्रोध बढ़ता जा रहा था।

बाबू चुप था।

फिर दयावती फूट-फूट कर रोने लगी।

'क्यों तमाशा दिखा रही हो?' बाबू रामभरोसे कहता, 'कोई पड़ोसी सुनेगा तो क्या कहेगा?'

इस तरह पति-पत्नी रात भर एक दूसरे पर झपटते रहे और सवेरा हो गया।

जाग-जाग और रो-रो कर दयावतीकी आँखें सूज गईं। रातको अलमारियाँ आगे-पीछे करते, चूहोंके बिल ढूँढ़ते, बाबू रामभरोसेकी कमीज़ फट गई। सवेरे भी वह वही कमीज़ पहिने था। न उसे नहाने की सुध थी, न कपड़े बदलनेका ख़्याल आया।

श्यामसुन्दर सुबहसे ही हर रोज़की तरह घरके काममें जुटा हुआ

था। आख़िर काम करते-करते वह चुपकेसे उस कमरेमें गया और अल-मारीके निचले ख़ानेमें कपड़ोंकी तहमें पड़े सौ-सौके आठ नोट उठा कर सबके सब उस कोनेमें वैसे-के-वैसे रख दिये जहाँ बाबू रामभरोसेने पहली साँझको रखे थे।

फिर घरके कामोंमें श्यामसुन्दर उसी तरह जुट गया। कभी सफ़ाई करता। कभी बरतनोंको इकट्ठा करता। कभी घड़ोंमें पानी भर-भर कर रखता। बच्चोंको बुला-बुला कर दूध पिलाता। कोई आधा घण्टा यों बीता होगा कि श्यामसुन्दरने सुना जैसे एकदम खुशीसे उछल कर बाबू रामभरोसे अपनी पत्नीको आवाज़ दे रहा हो। दौड़ती हुई दयावती कमरेमें गई। फिर सारा परिवार इकट्ठा हो गया। सौ-सौके आठ नोट वैसे-के-वैसे उसी जगह पड़े थे जहाँ बाबू रामभरोसेने रखे थे।

हैरान निगाहोंसे बाबू रामभरोसे नोटोंकी ओर देखता। दयावती बार-बार अपनी आँखोंको मलती, यह कोई सपना तो नहीं था। एकदम सारे परिवारके चेहरे खिल उठे। बच्चोंने हँसना शुरू कर दिया। बड़े उन्हें प्यार करने लगे। श्यामसुन्दर सामने खड़ा एकटक देखता रहा।

'यह सब देवीकी दया है।' एकदम दयावतीको ख़्याल आया और इससे पहले कि पति कुछ कहसकता वह उसकी मुट्ठीसे एक नोट पकड़ कर उन्हीं पैरों मन्दिरमें प्रसाद चढ़ाने चली गई।

कोई एक घण्टेके बाद दयावती वापिस आई। पूरे पन्द्रह रुपयेका प्रसाद देवीके सम्मुख चढ़ाकर आई थी। जब वह अपने पति और बच्चों को बता रही थी कि किस प्रकार उसने देवीकी मानता पूरी की, नौकर भी पास खड़ा हुआ सुन रहा था।

आख़िर दयावतीने बोलना बन्द किया। और श्यामसुन्दरने धीरेसे कहा 'बाबूजी, मुझे भी दस रुपये दे देते, मेरी क़मीज़...

'अरे भाई ठहर भी जाओ, कुछ दिन। दे देंगे, भागे तो नहीं जाते' बाबू रामभरोसेने एकदम कहा। और फिर पत्नीसे मन्दिरके प्रसादकी बात शुरूसे सुनने लगा।

श्यामसुन्दर चुपचाप रसोईमें चला गया। काम करते-करते वह सोचता-शायद मालिकके पास फ़ालतू पैसे नहीं थे। शायद यही बात ठीक थी।

करामात

'...और फिर बाबा नानक घूमते हुए हसन अब्दालके जंगलमें जा निकले। गरमी सख़्त थी। चिलचिलाती हुई धूप। चारों ओर सुनसान; पत्थर ही पत्थर, रेत ही रेत, झुलसी हुई झाड़ियाँ, सूखे हुए पेड़। दूर-दूर तक मनुष्यकी ज़ाति नज़र नहीं आती थी।'

'और फिर अम्मी?' मैं उत्सुक हो रहा था।

'बाबा नानक अपने ध्यानमें मग्न चलते जा रहे थे कि उनके शिष्य मरदानेको प्यास लगी। पर वहाँ पानी कहाँ? बाबाने कहा भाई मरदाने सबर करो। अगले गाँव पहुँच कर जितना तुम्हारा जी चाहे पानी पी लेना। किन्तु मरदानेको तो सख़्त प्यास लगी थी। बाबा नानक यह सुन कर चिन्तामें पड़ गये। इस जंगलमें पानी तो दूर-दूर तक नहीं था और जब मरदाना जिद्द कर बैठता तो सबके लिए बड़ी मुश्किल हो जाती। बाबाने फिर समझाया, मरदाने यहाँ पानी कहीं भी नहीं, तुम सबर कर लो, भगवान्‌की इच्छा मान लो। किन्तु मरदाना तो वहींका वहीं बैठ गया। एक कदम और उससे आगे नहीं चला गया। बाबा शशोपंजमें पड़ गये। गुरु नानक मरदानेकी ज़िद्दको देखकर बार-बार मुसकराते, हैरान होते। आख़िर जब बाबाने मरदानेको किसी तरह मानते न पाया तो वह अन्तर्ध्यान हो गये। जब गुरु नानककी आँख खुली तब मरदाना मछलीकी तरह तड़प रहा था। सत्‌गुरु उसको देख कर मुसकराये और कहने लगे, भाई मरदाने! इस पहाड़ीके ऊपर एक कुटिया है जिसमें वली कन्धारी नामका एक दरवेश रहता है। यदि तुम उसके पास जाओ तो तुम्हें पानी मिल सकता है। इस इलाकेमें केवल उसका कुआँ पानीसे भरा हुआ है। और कहीं भी पानी नहीं।'

'और फिर अम्मी ?' मैं यह जाननेके लिए बेचैन हो रहा था कि मरदानेको पानी मिलता है कि नहीं।

'मरदानेको प्यास सख़्त लगी थी। सुनते ही पहाड़ीकी ओर दौड़ पड़ा। चिलचिलाती धूप, इधर प्यास उधर पहाड़ीका सफ़र, पसीना पसीना हुआ, फूले साँस मरदाना बड़ी कठिनाईसे ऊपर पहुँचा। वली कंधारीको सलाम करके उसने पानीके लिए विनती की। वली कंधारीने कुएँकी ओर संकेत किया। जब मरदाना उधर जाने लगा तब वली कंधारी के मनमें कुछ आया और उसने मरदानेसे पूछा, भले आदमी तुम कहाँ से आये हो। मरदानेने कहा, मैं नानक पीरका साथी हूँ। हम घूमते-घूमते इधर आ निकले हैं। मुझे प्यास लगी है और नीचे पानी कहीं नहीं। बाबा नानकका नाम सुनकर वली कंधारीको क्रोध आ गया। उसने मरदानाको अपनी कुटियामेंसे वैसे-का-वैसा निकाल दिया। थका हारा मरदाना नीचे बाबा नानकके पास आकर फ़रयादी हुआ। बाबाने उससे सारी कहानी सुनी और मुसकरा दिये। मरदाना तुम एक बार फिर जाओ, बाबा नानकने मरदानाको सलाह दी। इस बार तुम नम्रतासे जाना। कहना मैं नानक दरवेशका साथी हूँ। मरदानाको प्यास सख़्त लगी हुई थी। पानी और कहीं नहीं था। कुढ़ता हुआ, बड़बड़ाता हुआ फिर ऊपर चल दिया। किन्तु पानी वली कंधारीने फिर न दिया। मैं एक काफ़िरके साथीको चुल्लू भर भी पानी नहीं दूँगा। वली कंधारीने मरदानेको फिर वैसे-का-वैसा लौटा दिया। जब मरदाना इस बार नीचे आया तो उसका बुरा हाल था। उसके होठों पर पपड़ी जमी थी। मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। यों लगता था कि मरदाना घड़ी है या पल है। बाबा नानकने सारी बात सुनी और मरदानाको 'धन निरंकार' कह कर एक बार फिर वलीके पास जानेके लिए कहा। हुक्मका बाँधा मरदाना चल दिया लेकिन उसको पता था कि उसकी जान रास्तेमें ही कहीं निकल जायगी। मरदाना तीसरी बार पहाड़ीकी

चोटीपर वली कंधारीके चरनोंमें जा गिरा। किन्तु क्रोधमें जल रहे फकीरने उसकी विनतीको इस बार भी ठुकरा दिया। नानक अपने आपको पीर कहलवाता है और अपने मुरीदको पानीका एक घूँट नहीं पिला सकता? वली कंधारीने लाख-लाख ताने दिये। मरदाना इस बार जब नीचे आया प्याससे निर्बल बाबा नानकके चरनोंमें वह बेहोश हो गया। गुरु नानकने मरदानाकी पीठ पर हाथ फेरा, उसको हौसला दिया और जब मरदानेने आँख खोली, बाबाने उसे सामने एक पत्थर उखाड़नेके लिए कहा। मरदानाने पत्थर उठाया और नीचेसे पानीका झरना फूट निकला। जैसे एक नहर पानीकी बहने लगी हो। और देखते-देखते चारों ओर पानी ही पानी हो गया। इतनेमें वली कंधारीको पानीकी आवश्यकता हुई। कुएँमें देखा तो पानीकी एक सीप भी नहीं थी। वली कंधारी बड़ा हैरान हुआ। और नीचे पहाड़ीके दामनमें चश्में फूट रहे थे, नदियाँ बह रही थीं। दूर बहुत दूर एक कीकरके नीचे वली कंधारीने देखा बाबा नानक और उनका साथी बैठे थे। क्रोधवश वलीने चट्टानके एक टुकड़ेको अपने पूरे ज़ोरसे लुढ़काया। इस तरह पहाड़ी की पहाड़ी अपनी ओर आती देखकर मरदाना चिल्ला उठा। बाबा नानकने धीरज़से मरदानाको धन निरंकार कहनेके लिए कहा और जब पहाड़ीका टुकड़ा बाबाके सिरके पास आया, गुरु नानकने उसे हाथ देकर अपने पंजेसे रोक लिया। और हसन अबदालमें जिसका नाम अब पंजा साहब है अभी तक पहाड़ीके टुकड़े पर बाबा नानकका पंजा लगा हुआ है।'

मुझे यह साखी बड़ी अच्छी लग रही थी। पर जब मैंने यह हाथ से रोकनेवाली बात सुनी तो मेरे मुँहका सवाद फीका हो गया। यह कैसे हो सकता था? कोई आदमी पहाड़ीको किस तरह रोक सकता है? और पहाड़ीमें अभी तक बाबा नानकका पञ्जा लगा हुआ है! मुझे ज़रा विश्वास न आया। 'बादमें किसीने खोद दिया होगा।' मैं अपनी माँके साथ कितनी देर बहस करता रहा। यह तो मैं मान सकता था कि

पत्थरके नीचेसे पानी फूट आये। विज्ञानने कई ऐसे विधान बताये हैं जिनसे जिस स्थानपर पानी हो इसका पता लगाया जा सकता है। पर एक आदमीका लुढ़कती हुई आ रही पहाड़ीको रोक लेना, मैं यह नहीं मान सकता था। मैं नहीं मान रहा था और मेरी माँ मेरे मुँहकी ओर देखकर चुप हो गयीं।

'कोई लुढ़कती हुई आ रही पहाड़ीको कैसे रोक सकता है?' मुझे जब भी इस साखीका ख़्याल आता एक फीकी-सी हँसी मैं हँस देता।

फिर कई बार यह साखी गुरुद्वारेमें सुनायी गयी। किन्तु पहाड़ी को पंजासे रोकनेवाली बातपर मैं हमेशा सर मारता रहता। यह बात मैं नहीं मान सकता था।

एक बार यह साखी हमारे स्कूलमें सुनायी गई। पहाड़ीको पंजाके साथ रोकनेवाले भागपर मैं अपने अध्यापकके साथ विवाद करने लगा।

'करनीवाले लोगोंके लिए कोई बात कठिन नहीं', हमारे अध्यापकने कहा और फिर मुझे चुप करवा दिया।

मैं चुप तो होगया परन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ। 'आख़िर पहाड़ी-को कोई कैसे रोक सकता है?' मेरा जी चाहता मैं ज़ोर-ज़ोरसे पुकारूँ।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि हमने सुना पंजा साहबमें 'साका' हो गया है। उन दिनों 'साके' बहुत होते थे। जब भी कोई 'साका' होता मैं समझ लेता आज हमारे घरमें खाना नहीं पकेगा और रातको नीचे फ़र्शपर सोना होगा। लेकिन यह 'साका' होता क्या है, यह मुझे नहीं पता था।

हमारा गाँव पंजा साहबसे कोई ज़्यादा दूर नहीं था। जब इस 'साके' की सूचना आई मेरी माँ पञ्जा साहब चल दीं। साथ मैं था, मुझसे छोटी बहन थी। पंजा साहब का सारा रास्ता मेरी माँकी आँख नहीं सूखी। हम हैरान थे, यह साका होता क्या है।

और जब पंजा साहब पहुँचे, हमने एक अजीब कहानी सुनी।

दूर कहीं एक शहरमें फिरंगीने निहत्ते हिन्दुस्तानियोंपर गोली चला कर कई लोगोंको मार दिया था। मरनेवालोंमें नौजवान भी थे, बूढ़े भी थे, औरतें भी थीं, बच्चे भी थे। और जो बाकी बच गये उनको गाड़ीमें बन्द करके किसी दूसरे शहरके जेलमें भेजा जा रहा था। कैदी भूखे थे, प्यासे थे और हुक्म यह था कि गाड़ीको रास्तेमें कहीं भी ठहराया न जाय। जब यह ख़बर पंजा साहब पहुँची, जिस किसीने सुना लोगोंको चारों कपड़े आग लग गई। पंजा साहब जहाँ बाबा नानकने ख़ुद मरदानाकी प्यास बुझायी थी, उस शहरसे गाड़ीकी गाड़ी प्यासोंकी गुज़र जाय भूखोंकी गुज़र जाय, यह कैसे हो सकता था? और फैसला हुआ कि गाड़ीको रोका जायेगा। स्टेशन मास्टरको अर्ज़ी दी गई। टेली-फोन हुए। तार गये। पर फ़िरंगीका हुक्म था गाड़ी रास्तामें कहीं भी रोकी न जायेगी। और गाड़ीमें आज़ादीके परवाने, देशभक्त हिन्दी भूखे थे। उनके लिए पानीका कोई प्रबन्ध नहीं था। उनके लिए रोटीका कोई इन्तज़ाम नहीं था। गाड़ीको पन्जा साहब नहीं रुकना था। लेकिन पंजा साहबके लोगोंका यह फैसला अटल था कि गाड़ीको अवश्य रोक लेना है। और शहरवासियोंने स्टेशनपर रोटियोंके, खीरके, पूड़ोंके, दालके ढेर लगा दिये।

पर गाड़ी तो एक अंधेरीकी तरह आयेगी और तूफानकी तरह निकल जायेगी, उसको कैसे रोका जाये?

और मेरी माँकी सहेलीने हमें बताथा, 'उस जगह पटरी पर पहले वह लेटे, मेरे बच्चोंके पिता, फिर उनके साथ उनके और साथी लेट गये। उनके बाद हम पत्नियाँ लेटीं, फिर हमारे बच्चे...और फिर गाड़ी आई। दूरसे चीख़ती हुई, चिल्लाती हुई। सीटियोंपर सीटियाँ मारती हुई। अभी दूर ही थी कि आहिस्ता हो गई। पर रेल थी, ठहरते-ठहरते ही

ठहरते। मैं देख रही थी कि पहिये उनकी छातीपर चढ़ गये, फिर उनके साथवाले की छातीपर...और फिर मैंने आँखें वन्द कर लीं। मैंने आँखें खोलीं तो मेरे सिरके ऊपर गाड़ी खड़ी थी। मेरे साथ धड़क रही छातियोंमें से 'धन निरंकार' 'धन निरंकार' की आवाज़ आ रही थी। और फिर मेरे देखते-देखते गाड़ी पीछे हटी। गाड़ी पीछे हटी और पहियों के नीचे आई लाशें टुकड़े-टुकड़े हो गईं...।'

मैंने अपनी आँखसे लहूकी धाराको देखा। वहती-वहती कितनी ही दूर एक पक्के बने नालेके पुलके नीचे चली गई थी।

और मैं हक्का-बक्का हैरान था। मुझसे एक वोल न बोला गया। सारा दिन मैं पानीका एक घूँट न पी सका।

शामको जब हम लौट रहे थे, रास्तेमें मेरी माँ ने मेरी छोटी वहनको पंजा साहवकी साखी सुनायी। कैसे वावा नानक मरदानाके साथ इस ओर आये। कैसे मरदानाको प्यास लगी। कैसे वावाने वली कंधारीके पास मरदानाको पानीके लिए भेजा। कैसे वली कंधारीने तीन बार मरदानाको निराश लौटा दिया। कैसे वावा नानकने मरदानाको एक पत्थर उठानेके लिए कहा। कैसे पत्थरके नीचेसे पानीका झरना फूट निकला और वली कंधारीके कुएँका सारा-का-सारा पानी नीचे खिंचा हुआ आ गया। और फिर कैसे क्रोधमें आकर वली कंधारीने ऊपरसे पहाड़का टुकड़ा लुढ़का दिया। कैसे मरदाना घवराया, परन्तु वावा नानकने 'धन निरंकार' कहकर अपने हाथसे पहाड़के टुकड़ेको थाम लिया।

'लेकिन पहाड़को कोई कैसे रोक सकता है?' मेरी छोटी बहनने सुनते-सुनते झट मेरी माँको टोका।

'क्यों नहीं कोई रोक सकता!' वीचमें मैं बोल पड़ा। आँधीकी तरह

उड़ती हुई गाड़ीको अगर रोका जा सकता है तो पहाड़के टुकड़ेको क्यों नहीं कोई रोक सकता ?'

और फिर मेरी आँखोंमें से छल-छल आँसू बहने लगे। 'करनी वाले' उन लोगोंके लिए, जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर न रुकनेवाली ट्रेनको रोक लिया था और अपने भूखे-प्यासे देशवासियोंको रोटी खिलाई थी, पानी पहुँचाया था।

सफ़ेद पोश

सन्ती सोचती वह जग्गूका कहना क्यों माने। फिर उसका दिल कहता शायद जग्गूने उसपर जादू किया हुआ है और सन्ती जो कुछ जग्गू कहता करनेको तैयार हो जाती। तैयार तो हो जाती किन्तु कुछ देर बाद फिर अपना मन बदल लेती।

कई बार जब जग्गू उसे लातें मार रहा होता तो वह उसकी ओर इस तरह देखती जैसे कह रही हो—"मैं मर जाऊँगी, मैं मर जाऊँगी और फिर तुम किसको इस तरह मारोगे?" और फिर सन्ती सोचती उसपर जग्गूने जादू किया हुआ है। वह कैसे मर सकती है, और सन्ती जग्गूकी लातें खाती रहती।

जग्गू एक भेड़की तरह सन्तीको अपने पीछे लगाना चाहता था। जिधर वह जाता उधर वह जाय; जहाँ वह ठहरता वहाँ वह ठहरे, जहाँ वह बैठता वहाँ वह बैठे, जो करनेको कहता वही सन्ती करे। जैसे उसकी पहली पत्नी प्रीतो किया करती थी।

और जग्गू सोचता वह उसको कोई कठिन काम करनेको थोड़ा कहता था। बाज़ीगरोंमें वह भी थे जो अपनी औरतके सिरपर पैसा रखकर उसे तीरसे उड़ा देते। हर बार वह करतब करते, हर बार औरत, की जानको ख़तरा होता। एक सूत्र मात्र निशाना इधरका उधर हो जाथ तो तीर माथे पर लग सकता था, आँखको चीरकर निकल सकता था। और वह जो अपने बच्चेको टोकरेके नीचे रखकर उसे कबूतर बना देते थे। और वह जो अपनी घरवालीको लिटाकर उसके ऊपर कपड़ा डाल उसकी गर्दनपर छुरी फेर, देते थे। सन्तीको इसका जब ख्याल आता

तो उसको अपना पेशा अच्छा-अच्छा लगने लग जाता। वह जग्गूकी खार्यी सब लातोंको भूल जाता।

पर जग्गूका पेशा इतना भयानक था! सन्ती लाख अपने आपको समझाती फिर उसके दिलमें उसके लिए घृणा भर जाती और वह कोई न कोई बात कर बैठती जो जग्गूको बहुत बुरी लगती और जग्गू कहता मैं तुझसे पेशा करवाऊँगा, तेरी चोटियोंमें मोम लगाकर तुझे कोठेपर बिठाऊँगा और सन्ती थर-थर काँपने लग जाती। जो जग्गू कहता वही करनेके लिए तैयार हो जाती। तैयार तो वह हमेशा हो जाती किन्तु कर वह कभी कुछ न सकती।

जग्गू एक आँखसे काना था। जब भी कभी उसकी मारी हुई आँखका जिक्र आता वह कहता उसके पेशेमें वह काम आई थी। जग्गूका एक बाजू टेढा-मेढा था। यह बाजू भी जग्गूका अपने पेशामें टूटा था। जोड़नेवालेने जोड़ तो दिया लेकिन हड्डी उल्टी बैठ गयी। जग्गूकी एक लात बिलकुल ही कटी हुई थी किन्तु बिसाखियोंके सहारे जग्गू ऐसे चलता जैसे उसे कुछ हुआ ही न हो। राह चलते सन्ती बार-बार पीछे रह जाती। पीछे रही सन्ती उसकी टूटी हुई लातकी ओर जब देखती जग्गू हमेशा उसे याद दिलाता—"नेक बख़्त! यह लात तीन बार टूटी है। पहली बार टखनों तक काटी गयी, दूसरी बार घुटनों तक इसे उतार दिया गया और तीसरी बार पटसे काटनी पड़ी थी। आरीसे इसे अलग किया गया था।"

और फिर जग्गूने अपनी पहली पत्नीको अपने साथ काममें लगा लिया था। कितने दिन प्रीतोने उसका काम खूब चलाये रखा। भयानकसे भयानक अवसरोंपर उसको चोट तक भी कभी न आयी। 'जाको राखे साँइयाँ, मार न सकिहै कोए' उसकी पत्नी गाया करती थी। और जग्गू हैरान होता, कई मास हो गये थे नहीं काम उसकी पत्नी

करती थी जो जग्गू स्वयं करता था, पर उसको कभी खराश तक नहीं आयी थी।

और फिर एक साँझ जब जग्गू अपनी झुग्गीसे लौटा उसकी पत्नी उसके साथ नहीं थी। बाकी सब बाजीगर कहते कि जग्गूकी वह पत्नी कहीं भाग गयी थी। पर जग्गू हमेशा सन्तीको बताता कि अपनी पहली घरवालीको टोकरेके नीचे लिटाकर उसने कबूतर बनाया था और फिर वह उससे औरत न बन सकी। कबूतर बनकर उसके हाथोंसे फुर करके उड़ गयी। अब भी जब जग्गूकी झुग्गीपर कोई चितकबरी कबूतरी आ बैठती तो सन्ती सोचती शायद जग्गूकी पहली पत्नी हो बार-बार फेरे काटती है।

सन्तीको जग्गूका आकार अच्छा लगा था। चाहे उसकी एक लात नहीं थी, एक बाजू टेढ़ा था, एक आँख बह गयी थी पर सन्तीने जग्गूको दो टाँगोंके साथ, दो बाजुओंके साथ, दो आँखोंके साथ भी देखा हुआ था। और जब उसकी माँ ने जग्गूका नाम लिया तो वह उसके साथ ब्याह-को तैयार हो पड़ी थी। सन्ती सोचती जो कुछ भी जग्गू काम करता था उसका काम अवश्य सुथरा होगा। न शेप बाजीगरोंकी तरह वह कबूतर पालता था, न मुर्गियाँ पालता था, न साँपोंके पीछे फिरता था। न शेप बाजीगरोंकी तरह वह जड़ी-बूटियाँ ढूँढता था, न दारूदर्मल करनेके दावे करता था। न टोने बताता था न टोटके करता था। जग्गूका नाम कभी किसीने चोरी डाकेके सम्बन्धमें भी नहीं सुना था।

पर जब पहली बार जग्गू सन्तीको अपने कामपर लेकर गया, वह अपने पतिके पेशेको देखकर हक्की-बक्की रह गयी। सिरसे लेकर पाँवतक उसके पसीना आ गया। कितनी देर वह थर-थर काँपती रही। उसको चक्कर आने लगे। उसको जग्गूमें एक कसाई नज़र आया जैसे बाकी कई बाजीगरोंमें उसे प्रतीत होता था।

'इससे तो' वह सोचती, 'मैं किसी...' पर वह किसके साथ ब्याह करती। बाजीगरोंके सारे काम मुश्किल थे और अपने गाँवमें किसीने उसके लिए हामी नहीं भरी थी। और फिर बाजीगर उधर आ निकले और उसकी माँने उसे जग्गूके पल्ले बाँध दिया।

इस तरह अपने ख्यालोंमें सन्ती डूबी हुई थी कि जग्गूने इसके मन-की बात समझते हुए सामने वाली सात मंज़िली इमारतकी ओर संकेत किया। एक आदमी सातवीं मंजिलसे रस्सियोंके साथ लटककर दीवारकी मरम्मत कर रहा था। सड़कसे जहाँ सन्ती और जग्गू खड़े थे वह मज़दूर एक पुतलीकी तरह लग रहा था और बस।

और सन्ती कहने लगी 'हाय कहीं रस्सी जो टूट जाये! हाय कहीं इसका हाथ जो उचक जाय! हाय कैसे चमगादड़की तरह लटका हुआ है! हवा आती है तो झूलने लग पड़ता है। यह थकता नहीं? इसको चक्कर नहीं आते? कितनी देर और इस तरह लटका रहेगा...' इस भाँति प्रश्न करती सन्ती अपने पतिके पेशेको जैसे भूल गयी थी।

अभी वह निर्णय भी नहीं कर पायी थी कि सामने सड़कसे आती हुई एक मोटरको देखकर जग्गूने सन्तीको सड़कपर धकेल दिया। अभी मोटर दूर ही थी कि सन्ती आँखें बन्द किये चिल्लाती हुई लौट आयी। मोटर तो आ रही थी। शेष समय फ़िजूल गँवानेके बजाय जग्गू खुद सड़कपर उतर गया। इस तरह जैसे उसकी पत्नी कोई वस्तु सड़कपर गिरा आयी थी और वह उसे उठाने लगा हो। तेज़ आ रही मोटरने जग्गूको बचानेकी कोशिश की, किन्तु जिस ओर मोटर हुई जग्गू उसी ओर हो गया। ऐसे जैसे गड़बड़ा कर आदमी फैसला नहीं कर पाता। फिर मोटर उसके ऊपर आ गयी और जग्गू आप ही आप गिर पड़ा। मोटर जग्गूसे कोई एक फुटकी दूरीपर रोक ली गयी। जग्गू मिट्टी-धूलमें लथपथ हो गया था। उसके कानके पाससे लहूकी एक धार बह रही

थी। मोटरवाले बाहर निकले। पहले तो वह जग्गूको डाँटने लगे फिर उन्होंने उसका लहू देखा और चुप हो गये। इतनेमें सन्तीने वावेला करना शुरू कर दिया, जैसे उसे जग्गूने समझाया था। मोटर वाले सेठने जग्गूकी मुट्ठीमें दसका नोट पकड़ाया और मोटर लेकर वह चले गये।

अभी मोटर चार कदम आगे गयी थी कि जग्गू खिलखिला कर हँस पड़ा। एक खराशके १० रुपये! और फिर सन्ती भी उसकी हँसीमें शामिल हो गयी।

जग्गूने सन्तीको समझाया कि मोटरवाले जहाँ तक सम्भव हो किसीको नीचे नहीं लेते। हाँ, ट्रकों-लारियों वालोंके समीप नहीं जाना चाहिए। मोटर वाला तो मोटर तोड़ डालेगा मगर किसीको नीचे आनेसे ज़रूर बचायेगा और फिर मोटरवाले तो अधिकतर दफ्तरोंके अफसर या पूँजीपतियोंके ड्राइवर होते हैं। किसीको उनसे नुकसान हो जाय तो जो कुछ भी उनके पल्ले हो वह देकर जान छुड़ा लेते हैं। दोष चाहे उनका हो या न हो। कचहरियोंसे ये लोग बड़े डरते हैं और फिर कसूर चाहे किसीका हो। हर किसीकी सहानुभूति उसके साथ होती है जिसको चोट आई हो। मोटरवाला तो हमेशा कसूरवार ठहराया जाता है।

और फिर जग्गू जिस तरह किसीकी मोटरके नीचे आता था किसी-को पता थोड़ा लगने देता कि यह जानबूझ कर घायल हो रहा है। कभी यों लगता जैसे वह सड़क पार कर रहा है, कभी यों लगता जैसे वह अपनी राह जा रहा है और मोटरवाले सोचते उनका अन्दाज़ा गलत हो गया था और शर्मिन्दगीमें, डरसे, किसी दामों जान छुड़ानेको तैयार हो जाते।

जग्गूने सन्तीको बताया जब उसका बाजू टूटा उसे पचास रुपये मिले थे, जब उसकी आँख फूटी सौ रुपये, पाँवकी बारी फिर सौ, घुटने-

के समय डेढ सौ और जब उसकी पूरी टाँग काटनी पड़ी थी तो उसने दो सौ रुपये कमाये थे। दो सौ रुपये और अस्पतालका सारा खर्च।

जग्गू कहता मोटरके नीचे इस तरह आना चाहिये कि न ज़्यादा चोट लगे और न दूसरेको पता लगे कि जान-बूझकर इस तरह किया गया है। और हादसेके बाद वावेला करके, रो-धोकर मोटरवालेके पास जितने पैसे हों बटोर लेने चाहिये। एक न एक अपना आदमी साथ ज़रूर होना चाहिये जो लोगोंको इकट्ठा कर सके, उनकी हमदर्दी ले सके।

जग्गू कहता उसने जब कभी भी अपना अंग तुड़वाया था जानबूझ कर तुड़वाया था। जब उसे ज़्यादा पैसोंकी आवश्यकता होती वह अपने आपको ज़्यादा घायल करवा लेता। 'और जब प्रीतो मोटरके नीचे आयी...' और फिर जग्गू सहसा चुप हो गया। उसने तो सन्तीको कहा था कि उसकी पहली पत्नी कबूतर बनके उड़ गयी थी।

सन्ती जग्गूके पेशेमें किसी तरह शामिल न हो सकी। हर बार वह सड़कपर पाँव रखती उसको लगता जैसे उसे चक्कर आ रहे हों। उसकी आँखोंके सामने अंधेरा छा जाता। वह सड़कपर खड़ी रहती और मोटरवाला मोटर बचाकर निकल जाता।

एक बार सन्ती बिलकुल सड़कके भीतर जा खड़ी हुई। मोटरवालेने बड़ी मुश्किलसे उससे कोई एक गज़ दूर मोटर रोक ली और फिर नीचे उतरकर तड़ाक-तड़ाक सन्तीको चाँटे जड़े। जग्गू आगे हुआ उसे भी उसने धक्का देकर नीचे फेंका और स्वयं मोटर चलाकर चला गया।

जग्गूका उसूल था कि एक सड़कपर केवल एक बार हादिसा करनेकी कोशिश करता, और एक शहरमें ज्यादा दिन कभी न ठहरता। सन्ती उसका कहा मानकर आगे तो हो जाती किन्तु उसका तीर हमेशा चूक जाता। कई बार तो मोटर अभी सौ कदम दूर होती और

वह पहले ही डरके मारे चिल्लाने लग जाती, बेहोश होकर गिर पड़ती और मोटरवाले घूर-घूरकर उसकी ओर देखते बचकर निकल जाते।

फिर सन्तीको माँ बननेकी आस लग गयी। इन दिनों लाख जग्गू उससे लड़ता वह बाहर कदम न रखती। और फिर सन्ती माँ बन गयी। अब तो जग्गूकी मजाल नहीं थी कि सन्तीको अपने कामके लिए संकेत तक कर जाय।

लेकिन जग्गूकी मुसीबत यह थी कि उसकी टूटी हुई लात, उसका टेढा बाजू, उसकी एक ही एक आँखको देखकर मोटर वाले हमेशा सँभल जाते और जहाँ तक सम्भव हो उसे चोट न लगने देते। कोई दिन ही होता जो उसका दाव लगता। और इस तरह उसके रोजगारमें कई दिनसे मन्दा आया हुआ था।

सफेद पोश जग्गू और कोई काम नहीं कर सकता था। जग्गू भूखा रह लेता पर बाजीगरोंमें अपनी सरदारी बनाये रखता। किन्तु उसका यह भ्रम ज़्यादा देर बना न रह सका। जग्गूको ऐसे लगता जैसे जीवन-के ताने-बानेके तार उसके हाथोंसे निकलते जा रहे हों, छूटते जा रहे हों।

और फिर एक बार कई दिनोंसे जग्गूके घर न आग जली और न कुछ पका। शहरकी सड़कोंपर खड़ा हो-हो जग्गू हार गया था। और अपने बच्चेकी माँकी ओर उसकी मजाल नहीं थी एक बार देख भी जाय। जबसे माँ बनी थी सन्ती तो जैसे शेरनी हो गयी थी।

बेरोज़गारीका फिक्र हर घड़ी जग्गूको घुनकी तरह खाये जा रहा था। भूख ज़रूरतें, ग़रीबी। जग्गू घुलता जा रहा था। चार-चार दिन, पाँच-पाँच दिन वह फाके काट लेता पर मैले कपड़ोंसे कभी बाहर कदम न रखता।

फिर एक दिन जग्गूका बच्चा बीमार हो गया। सारी रात उसको बुखार चढ़ा रहा। सारी रात वह खाँसता रहा। सुबह जग्गू उसे उठा

कर दवाखाना ले गया। सन्तीका अपना जी ठीक नहीं था। वह साथ नहीं गयी। दुपहरको जब जग्गू लौटा सन्तीने देखा वह खुश-खुश था। बच्चेकी दवाई भी वह लाया, घर खानेके लिए आटा भी लाया, घी भी लाया।

अगले दिन जग्गू बच्चेको फिर दवाखाने ले गया। बच्चा चाहे कुछ ठीक ही था, सन्ती अभी भी तन्दुरुस्त नहीं थी। और जब जग्गू लौटा आज फिर वह खुश-खुश था। वह अपने लिए कपड़े लाया, बच्चेके लिए कपड़े ख़रीदकर ले आया।

तीसरे दिन जग्गू और बच्चेको शहर गये कोई दो घण्टे हुए थे कि धूपमें बैठी सन्तीको सहसा जैसे एक बेचैनी-सी महसूस होने लगी। उसके दिलमें कोई बात आयी और वह वैसीकी वैसी शहरकी ओर दौड़ उठी। साँस फूले, तड़पती हुई सन्ती जग्गूको सड़क-सड़क ढूंढ रही थी कि आख़िर उसने उसे एक पेड़के नीचे खड़े हुए देख लिया।

सामने सड़कपर उड़ती हुई एक मोटर आ रही थी, और सन्तीको पता था कि जग्गू क्या करने वाला था। एक गोलीकी तरह भागी हुई सन्तीने जग्गूसे जाकर अपना बच्चा छीन लिया। मोटर तो नज़दीक आ चुकी थी। अपने शिकारके लिए तैयार गड़बड़ाकर जग्गू स्वयं सड़कपर कूद पड़ा। जग्गू सड़कपर गया और मोटरने उसे लपेटमें ले लिया। बायें हाथके पहियेने उसको गेंदकी भाँति उछाल कर आगे फेंका और फिर दायें हाथका अगला पहिया भी और पिछला पहिया भी उसकी गर्दनके ऊपरसे गुज़र गये, उसके सरके ऊपरसे गुज़र गये।

और जग्गूका सारा मगज़ वह कर बाहर आ गया। उसके दूधसे सफ़ेद कपड़े खूनसे, मिट्टीसे लथपथ हो गये। और सन्तीके देखते-देखते मोटर वाला यह गया वह गया हो गया।

बन्दी

यह कहानी उन दिनोंकी है जब हमारे देशमें फिरंगीका शासन था।

और वह कहता कोई कारण नहीं कि एक देश दूसरे देशपर राज करे। और यह बात फिरंगीको पसन्द नहीं थी। फिरंगीने उसे पकड़ कर क़ैद कर दिया।

कई वर्षोंसे वह जेलकी दीवारोंमें बन्द था। जेलकी ऊँची-ऊँची दीवारें। दीवारोंपर काँटेदार तारोंके जंगले, नीचे काँचके टुकड़ोंकी रुकावटें। जेलकी दीवारें वैसी की वैसी खड़ी थीं जबसे वह वहाँ आया था। जेलके चौकीदार बदलते रहते पर उनकी गोलियोंसे भरी बन्दूकें वैसीकी वैसी फुंकारती रहतीं। उनकी नज़रोंमें वैसाका वैसा कहर टपकता रहता। उनकी थूकमें ज़हर होता। उनकी हर हरकत-में घृणा और बदतमीज़ी चिन्नी हुई दिखाई देती। प्रतिदिन उसी तरहकी आवाज़ें उसके कानोंमें आतीं जब वह सोता, प्रति दिन उसी तरहकी आवाज़ें उसको सुनायी दे रही होतीं जब वह जागता। जेलकी रोटी वैसीकी वैसी बेसवादी होती। जेलके कर्मचारी वैसेके वैसे बेलिहाज़ होते। जेलकी हवामेंसे वैसीकी वैसी दुर्गन्ध आती, चोरोंकी, उचक्कों-की, डाकुओंकी, जेबकतरों की, कामियोंकी, बदमुआशोंकी, गुंडोंकी, झूठोंकी, दम्भियोंकी, धोखेबाज़ोंकी, माँके हत्यारोंकी, बापके हत्यारोंकी। और जेलकी दीवारोंमेंसे वैसीकी वैसी फरयादें सुनायी देतीं, बेगुनाहोंकी, बेक़सूरोंकी, ग़रीब मजलूमोंकी। और वह इस सब कुछसे थक-थक कर भी ऊब गया था।

और फिर एक जेलर आया जो घंटों उसके साथ बातें करता रहता। वह कोई चोर, डाकू, हत्यारा थोड़ा ही था। वह तो अपने देशके लिए स्वतन्त्रता माँगता था। और स्वतन्त्रताकी माँग करना कोई ऐसा अपराध नहीं कि किसीके साथ बात न की जाय। जेलरकी उसके साथ मित्रता बढ़ती गयी, बढ़ती गयी। यहाँ तक कि कई शाम वह जेलके एक नुक्कड़में बने जेलरके बँगलामें गुज़ार देता। जेलरसे बातें, जेलरकी पत्नीसे बातें, जेलरके बच्चोंसे बातें। और यह सम्बन्ध एक प्रेम सा बन गया।

जब भी उसका जी चाहता, जेलमें खुलते जेलरके द्वारका पट खटखटाता, खिड़कीसे कोई आकर देखता और फिर उसके लिए दरवाज़ा खुल जाता। दफ्तरमें से वह घर चला जाता। वहाँ बैठा खाता रहता, खेलता रहता, पढ़ता रहता। पिछले कई दिनोंसे उसने जेलरके बच्चोंको पढ़ाना शुरू कर रखा था और इस युगलमें उसका खूब जी लगा हुआ था। कभी किसी बच्चेकी परीक्षा होती, कभी किसीको उसकी विशेष आवश्यकता होती और इस तरह प्रतिदिन उसकी प्रतीक्षा की जाती। एक बार वह जाता और कितनी-कितनी देर वहीं बैठा रहता। उसकी लाख ख़ातिरें होतीं।

पर तब भी वह बन्दी था। कभी-कभी जेलरकी कोठीमें बैठे जब वह सामने खुली सड़कको देखता तो उसका दिल धड़कने लगता। उसके पाँवमें जैसे काँटे चुभने लगते। उसके मुँहमें पानी भर आता। कितनी कितनी देर उसके नैन दूर क्षितिजपर जमे रहते। एक शामको बच्चोंको पढ़ाकर वापस जेल लौटनेकी बजाय वह कोठीके सामने गेटकी ओर चल दिया। बरामदेमें खड़े बच्चे हँसने लगे। कई कदम आगे जाकर उसे सहसा ख़्याल आया और वह लज्जित सा, आखें नीची किये लौट कर जेलके दरवाजे की ओर चला गया।

जेलर की कोठीके आँगनमें खड़ा एकबार उसे लगा जैसे उसका कोई परिचित सामनेसे गुज़र गया हो और वह कितनी देर एड़ियाँ उठा-उठा कर देखता रहा।

फिर एक दिन जब वह पढ़ा रहा था, उस सड़क की एक कोठीमें आग लग गई। एक शोर मचा, चीत्कार हुआ। फायरब्रिगेड जा रहे थे, मोटरें दौड़ रही थीं। उस कोठीके सब लोग दौड़े हुए उधर चले गये। सब नौकर भाग गये। वह अकेला बरामदेमें रह गया। दो कोठियाँ छोड़ कर एक कोठी जल रही थी। आगमें घिरी औरतें, बच्चे चिल्ला रहे थे, तड़प रहे थे और वह बरामदेमें खड़ा सुनता रहा, सुनता रहा। अपनी बाँहको उसने एक स्तूनके गिर्द लपेटा हुआ था।

कई दिन पश्चात् बैसाखीकी एक सुबह कितनी देर वह अपने बिस्तर पर लेटा रहा। बैसाखीके दिनके साथ उसकी कई सुन्दर यादें सम्बन्धित थीं। बैसाखीके दिन की बदमस्ती, बैसाखीके दिनकी रौनक, बैसाखीके दिन की गहमागहमीका ख़्याल करके उसका जी चाहता जेलकी निर्दयी दीवारोंके वह टुकड़े-टुकड़े कर दे। बैसाखीके दिन उसके गाँववाले जैसे पागल हो जाते थे। और सोचते-सोचते उसको ऐसा लगा जैसे उसका अपना दिमाग़ आज ठिकाने न हो। बैसाखीके दिन वह प्रथमबार गाँवसे शहर आया था और उसकी आँखोंके सामने एक नये जीवनके पट खुल गये थे। बैसाखीके दिन उसने पहली बार 'इनकलाब ज़िन्दाबाद' का नारा सुना था। 'इनकलाब ज़िन्दाबाद' का जब उसे ख़्याल आया तो कितनी देर उसके कानोंमें इनक़लाब ज़िन्दाबाद, इनक़लाब ज़िन्दाबाद गूँजता रहा। और उसका जी चाहता सर मार-मार कर बन्दीखाना की दीवारोंको वह तोड़ दे। और जब उसे इस तरह महसूस होता तो उसको अपने आपसे डर लगने लग जाता।

और आज बाहर धूप निकल आई थी और वह अभी तक अपने बिस्तरसे नहीं निकला था।

आज बैसाखीका दिन था और जेलरके घरसे उसे तीसरी बार सन्देश आ चुका था। "आपको साहब बुला रहे हैं", जब भी कोई उसे आकर कहता तो इसका अर्थ यह होता कि बुलावा साहबके घरसे है। किन्तु आज वह अपने बिस्तरमें से नहीं निकल रहा था। बिस्तरमें से निकला कमरेमें से बाहर निकलेगा, कमरेसे बाहर वह और बाहर चला जायगा और फिर पता नहीं क्या हो जाय।

अभी वह बिस्तरमें ही था कि जेलर स्वयं आके उसे अपने साथ ले गया। आज बैसाखीका दिन था, बैसाखीका दिन जब पहली बार उसने अपने देशके प्रिय नेताके मुखसे सुना था—"हम और ग़ुलामीकी क़ैदमें नहीं रहेंगे। आज़ादी हमारा पैदायशी हक है।" और आज कितने वर्षसे वह बन्दीख़ानाकी दीवारोंके पीछे घुल रहा था, दम तोड़ रहा था।

जेलरके घरमें बैसाखीके मेलेकी चहल-पहल उसके दिलके चोरको जैसे बार-बार जगा रही थी। वह बार-बार अपने आपको समेट-समेट रखता। उचक-उचककर सामने सड़क पर पड़ रहीं दृष्टियोंको वह रोक-रोक रखता। हवाका हर झोंका जैसे उसे उन्मत्त कर रहा था और उसे पता नहीं वह क्या खा रहा था, और उसे पता नहीं वह क्या पी रहा था और उसे पता नहीं वह क्या बोल रहा था, और उसे पता नहीं वह क्या सुन रहा था।

और फिर आँखें मूँदे सहसा वह उठ खड़ा हुआ और साथके गुसलखानेमें चला गया। कितनी देर जब वह गुसलखानेसे न निकला, घरवालोंको चिन्ता हुई। उन्होंने जब देखा, तो गुसलखानाका पिछला दरवाज़ा खुला था और अन्दर वह नहीं था।

बन्दी बन्दीख़ानासे भाग गया था।

जेलरको जब पता लगा तो उसके हाथ पाँवके नीचेसे ज़मीन निकल

गयी। उसको अपने कानोंपर विश्वास नहीं आ रहा था। चारों ओर उसने अपने आदमी दौड़ाये किन्तु क़ैदीकी कोई ख़बर न मिली।

आज़ादीकी एक सुहानी यादमें बैसाखीके दिन जेलकी दीवारोंकी क़ैदसे भागा। वह बहुत दूर अभी नहीं पहुँचा था कि डरसे दरियाके किनारे एक झोंपड़ीमें वह जा छिपा। वह झोंपड़ी एक मज़दूरकी थी।

मज़दूर कामपर गया हुआ था। पीछे उसकी वृद्धा माँ थी, बूढ़ा बाप था। एक और लावारिस सम्बन्धी था और दस बच्चे थे। मज़-दूरको आठ आने रोज़ मज़दूरी मिलती थी। इतवारके दिन छुट्टी होती थी और यदि और किसी दिन काम न होता तो उस दिनके भी पैसे कट जाते थे। बूढ़े बापकी आँखोंके आगे मोतियाबिन्द आ चुका था। बूढ़ी माँ तपेदिककी बीमारीसे हड्डियोंका एक पिंजरा रह गई थी और बस। लावारिस सम्बन्धी मिरगीका रोगी था। बच्चे जैसे जोकें हों—कोई खांस रहे, कोई बुखारमें पड़े, किसीकी आँखें दुख रहीं, किसीको फोड़े निकले हुए, अधकजेसे, अधनंगेसे, हर एकके चेहरेपर भूख और ग़रीबी चित्री हुई थी। हर एकको कोई न कोई रोग था। उनको पता नहीं था अपने आपसे क्या करें। कभी आपसमें लड़ने लगते, कभी बूढ़े दादाकी गन्दी गालियाँ सुनने लग जाते।

कोई आध घंटा उसे इस झोंपड़ीमें आये हुआ होगा कि उसे इस वातावरणसे उसी तरहकी दुर्गन्ध आने लगी जैसे उसे जेलकी बारकोंमेंसे आती थी। अशिक्षितोंकी, भूखोंकी, नंगोंकी, ग़रीबोंकी, बेरोजगारोंकी, चोरोंकी, दम्भियोंकी, हत्यारोंकी दुर्गन्ध।

और वह इस झोंपड़ीसे निकलकर दौड़ पड़ा। बाहर जाना इस समय खतरासे ख़ाली नहीं था। पर तो भी वह दौड़ पड़ा। एक पल उस झोंपड़ीमें और तो उसे ऐसा लगता जैसे उसका दम घुट जायगा; जैसे जेलकी दीवारें उसे अपने नीचे पीस रही थीं।

बहुत आगे नहीं गया था कि उसे एक शिवाला दिखायी दिया। चुपकेसे वह उसके अन्दर जा बैठा। पत्थरके एक टीले पर उभरी हुई एक ओर सिन्दूर लगा हुआ था। और लोग चीटियोंकी तरह आ-आकर उसके सामने माथे रगड़ते और उसे अपनी मनोकामनाएँ पूरी करनेके लिए कहते। कोई झूठा मुकदमा जीतनेके लिए विनती करता, कोई अपने पाप, अपने अपराध छिपानेके लिए हाथ जोड़ता। कोई रोगोंका इलाज ढूँढ़ता। जो भी आता माँगता, जो भी आता फरयादें करता। और बूढ़ा पुजारी हर किसीको खुश करके लौटाता। किसीको कोई मन्त्र बताता, किसीको टोना करनेके लिए कहता। पत्नी पतिकी शिकायत लेकर आयी, उसने पत्नीको खुश कर दिया। पति पत्नीका दुःख रोने आया उसने पतिको सन्तुष्ट कर दिया और दोनोंसे उसने कुछ न कुछ धरवा लिया। उसे शिवालामें आये बहुत देर नहीं हुई थी कि लोग एक पन्द्रह सालके जवान बच्चेको उठाकर लाये। उसको साँपने काटा था। लड़का काला नीला हुआ बेसुध पड़ा था। लाख जतन करने पर भी वह अब चुप न रह पाया। उसने लड़केके माता पिताको कहा कि वह उसे फौरन अस्पताल ले जायँ। अभी यह बात उसके मुँहमें ही थी कि पुजारीने उसे इस तरह देखा जैसे नज़रों ही नज़रोंमें उसे भस्म कर देगा।

पुजारी मन्त्र पढ़ता रहा, पढ़ता रहा, फूँकें मारता रहा, मारता रहा, हर फूँकपर घरवालोंसे कुछ न कुछ धरवा लेता और फिर उसके देखते-देखते कञ्चन सी काया वाला पन्द्रह सालका वह बच्चा ठण्डा यख हो गया। बदनसीब मां बाप जब अपने बच्चेकी लाशको उठाकर ले जा रहे थे तो उसे ऐसे प्रतीत हुआ जैसे अन्धविश्वासकी दीवारें उसे चारों ओरसे घेरे हुए थीं और उनमें वह एक तिलकी तरह पिसा जा रहा था। जैसे उसे कभी-कभी जेलकी दीवारोंको देखकर लगता था।

अटल चट्टानोंकी तरह खड़ी हुई। और आँखें बन्द किये पसीना पसीना हुआ वह शिवालामें से निकल आया।

सड़कपर चलना, धरतीपर कहीं भी बाहर एक क़दम रखना उसके लिए लाख ख़तरोंसे भरा हुआ था। उसको पता था कि सैकड़ों लोग उसकी तलाशमें फिर रहे होंगे। और अभी वह थोड़ी ही दूर गया था कि उसने देखा कई लोग एक कतारमें खड़े थे। वह भी उनमें खड़ा हो गया। कतार इतनी लम्बी थी कि उसका सिरा कहीं नज़र नहीं आ रहा था। धीरे-धीरे लोगोंकी बातोंसे उसे पता लगा कि वह कतार बेकार आदमियोंकी थी, जो कामकी तलाशमें अपना नाम लिखानेके लिए खड़े थे। इतने बेकार लोग, इतने बेकार लोग, वह तो जेलके वन्दियोंसे भी कहीं अधिक थे। और कोई कहता वह तो तीन दिनका धरना जमाये हुए था, तब भी उसकी बारी नहीं आई थी। और अभी वह कतार बढ़ रही थी। इतनी लम्बी, इतनी लम्बी न उसका अगला सिरा किसीको दिखायी देता था, न पिछला सिरा।

और सहसा उसे वह कतार जेलकी दीवारोंकी तरह अटल खड़ी हुई महसूस होने लगी। पत्थरोंकी दीवार, सिलोंकी दीवार, जो किसीके तोड़नेसे नहीं टूटती थी, बढ़ती ही जाती थी, बढ़ती ही जाती थी, दीवारोंके पीछे दीवारें उसर रही थीं। और उसे लगा जैसे वह जकड़ा जा रहा हो। उसको इस कड़ी क़ैदमेंसे कोई नहीं निकाल सकेगा।

और वह पागलोंकी तरह वहाँसे भाग निकला। दौड़ता गया, दौड़ता गया। जिन राहोंसे वह आया था उन राहोंपर वह वापस दौड़ता गया, दौड़ता गया। और इससे पहले कि जेल वाले निराश हुए, और इससे पहले कि रजिस्टरोंमें एक बन्दीके भाग जाने की रपट दर्ज होती, वह वापस अपनी कोठरीमें पहुँच गया।

पटना म्यूज़ियममें एक पीस

हम कुछ साहित्यकार पटनामें सरकारी मेहमान थे। जहाँ भी हम जाते मुझे हर बातमें एक तक़ल्लुफ़ दिखायी देता। यों तो किसी बातमें तक़ल्लुफ़ मुझे ज़हर लगता है पर देशके साहित्यकारोंके हो रहे इस आदरको देखकर मुझे सब कुछ अच्छा-अच्छा सा लग रहा था।

शामको हमें पटना म्यूज़ियम देखना था। मेरे पास केवल एक घंटा बचता था पर पटना वालोंका तक़ाज़ा था कि कोई पटना आये और यहाँका अजायबघर न देखे यह कैसे हो सकता है। म्यूज़ियम दिखानेके लिए नियत किये गये अधिकारीको मेरी कठिनाईका ज्ञान था इसलिए हम केवल खास-खास कमरोंमें जा रहे थे। केवल खास-खास पीस ही देख रहे थे। यों तो पटनाके म्युज़ियमको देखनेके लिए चाहे कोई सारा दिन लगा दे।

इस तरह जल्दीमें एक उड़ती हुई नज़र चीज़ोंको देखते, इतने बड़े अजायबघरमें न चाहते हुए भी मैं ठहर-ठहर जाता। कहीं बुद्धका बुत मुझे जैसे कील लेता। कहीं मिट्टीकी कोई मूर्ति मुझे पकड़ कर बैठ जाती। म्युज़ियमका नौजवान अधिकारी मुझे बता रहा था, कौन सी चीज़ उन्हें कहाँसे मिली है। किस टीलेमें उन्होंने क्या दबा हुआ पाया। और मैं क़दम-क़दमपर रुक-रुक जाता।

किन्तु एक बात मुझे कुछ देरसे महसूस हो रही थी। जिस कमरेमें हम क़दम रखते, हवामें कुछ-कुछ धूल सी होती। वास्तवमें साथके कमरेमें हमें देख कर अगले कमरे वाले अपनी वस्तुओंको झाड़ना शुरू कर देते। अभी मुश्किलसे झाड़-पूँछ ख़त्म कर पाते कि हम वहाँ पहुँच जाते। पिछले कमरेमें हमें देखकर अगले कमरेमें झाड़-पूँछका सिलसिला

कितनी देरसे जारी था और आखिर मेरे फेफड़ोंने और धूल खानेसे इनकार कर दिया। कोई पाँचवें कमरेमें हम होंगे कि मुझे छींक आई। म्युज़ियमके नौजवान अधिकारीको भी हलकी सी खाँसी उठी। छठे कमरेमें भी वैसी ही धूल थी। हमारे आनेसे एक मिनट पहले तो वहाँ झाड़-पूँछ ख़त्म हुई थी। सातवें कमरेमें भी ऐसे ही था। उससे अगले कमरेमें जब हमने क़दम रखा तो कमरेका चौकीदार झाड़न लिये अभी तक एक मूर्तिको साफ़ कर रहा था। 'बन्द करो यह बदतमीज़ी।' म्युज़ियमके नौजवान अधिकारीसे और बर्दाश्त न हो सका और उसने आख़िर चौकीदारको वक्त़-के-वक्त़ इस तरह सफ़ाई करनेपर डाँट दिया। चौकीदार अपने अफसरको इस तरह बरसता देख ठिठरके रह गया। जहाँ खड़ा था वहीं खड़ा रहा।

और फिर यह ख़बर पता नहीं किस तरह आगे चली गई। अब किसी भी कमरेमें पहलेकी भाँति धूल-धूल नहीं थी। किसी भी कमरेमें चौकीदार झाड़नको किसी कोनेमें छिपा रहा मैंने नहीं देखा।

फिर सीढ़ियाँ चढ़ कर हम ऊपरकी मंज़िल पर गये। यह कमरा चित्रकलाका था। कमरेमें घुसते ही मेरी दृष्टि बायीं ओर महाराजा रणजीतसिंहके एक चित्र पर पड़ी। चित्र बहुत बढ़िया था किन्तु एक स्थानपर मुझे अजीब-सा एक झोल नज़र आया। म्युज़ियमके नौजवान अधिकारीसे मैंने उस चित्रकी ओर संकेत करके इस बातका ज़िक्र किया। उसने आगे बढ़कर देखा। वास्तवमें उस स्थानपर चित्रमें मिट्टी जमी हुई थी। चित्रकारका कसूर नहीं था। यह देख म्युज़ियमका नौजवान अधिकारी पास खड़े चौकीदारपर टूट पड़ा।

'साहब, मेरा काम झाड़-पूँछ करना नहीं। यह काम फ़राशका है।' चौकीदारने जवाब दिया और पटपट हमारी ओर देखने लगा।

'तो फिर तुम दफ़ा क्यों नहीं हो जाते?' नौजवान अधिकारीने और चिल्लाकर कहा, 'मैं आज ही तुम्हारी छुट्टी करवाये देता हूँ।'

और हम आगे चल दिये।

चौकीदार वहीं-का-वहीं जैसे बुत बन गया। जहाँ खड़ा था वहीं खड़ा रहा। विट विट उसकी हमारी ओर देख रही नज़रें नीची हो गई।

उसने सोचा उसकी नौकरी छूट जायेगी। उसका रोज़गार छिन जायेगा। और फिर पहली तारीख़ उसको तलब नहीं मिलेगी। और फिर हर पहली तारीख़ उसके घर तनख़्वाह नहीं जाया करेगी। और फिर! और फिर!

और फिर उसके घर भी उसके पड़ोसीकी तरह दिनमें एक बार खाना पकना शुरू हो जायेगा। कभी एक बार, कभी एक बार भी नहीं।

और फिर वह भी बनियेसे उधार लेना शुरू कर देगा। हर बार झूठ बोल कर कर्ज़ माँगेगा जो वह कभी नहीं उतार सकेगा।

और फिर उसके बच्चोंके बालोंमें भी जुएँ पड़ जायँगी जिनको निकालते-निकालते उसकी पत्नीकी नज़र रह जायगी।

और फिर उसको बू आया करेगी, अपनेमें से, अपने बच्चोंमें से, अपने बच्चोंकी माँमें से।

और फिर फटे हुए कपड़े जैसे मुँह फाड़-फाड़ उसे खानेको दौड़ेंगे। उसका अपना घिसा हुआ कुरता, उसकी पत्नीका टाकियोंवाला घाघरा, उसके बेटों-बेटियोंके कपड़ोंके चीथड़े।

और फिर हर समय उसके घरमें कोई कुछ मांग रहा होगा, कोई किसीसे छीन रहा होगा, कोई लड़ रहा होगा, बड़े छोटोंको पीटेंगे, छोटे अपनेसे छोटोंपर ख़फ़ा होंगे।

और फिर उसके बच्चोंके मुँहपर गालियाँ चढ़ जायँगी। उसकी पत्नी हर समय उनको कोसा करेगी। उसके अपने दाँत उसके होठोंपर खुभते रहा करेंगे।

और फिर उसकी जवान बेटी अपने पड़ोसियोंके लड़केके साथ निकल जायगी। वह लड़का जो उसके पिताको ज़हर लगता है।

और फिर इसे लोग परसू पुकारना शुरू कर देंगे। हर समय बेगारोंमें यह जुटा रहा करेगा। हर समय इसका मज़ाक होता रहा करेगा।

और फिर जाड़ेकी झड़ीमें जब इसकी छत चूने लगेगी, इसके पास पैसे नहीं होंगे कि मरम्मत करा सके। ठंडमें ठिठुरते बच्चोंके लिए कपड़े नहीं होंगे कि उनका तन ढँक सके। चूल्हेमें आग नहीं होगी कि सर्दीको रोका जा सके।

और फिर उसके घरके चप्पे-चप्पेको रोग आकर चिमट जायेंगे। उसकी पत्नी हर समय खाँसती रहा करेगी। उसके बच्चे मरियलसे हो जायेंगे। वह ख़ुद यदि लेटा होगा तो उठनेका उसका जी नहीं चाहेगा, अगर उठेगा तो खड़ा होनेके लिए उसका मन नहीं मानेगा। अगर खड़ा होगा तो चलनेके लिए उसमें शक्ति नहीं होगी। और यदि चलेगा तो दौड़नेका उसका हौसला नहीं होगा।

और फिर वह थक जायेगा नयी नौकरीकी प्रतीक्षा में। दूसरी नौकरीको ढूँढ-ढूँढकर हार जायेगा। जहाँ जायेगा बाहर 'नौकरी कोई नहीं' के बोर्ड लगे होंगे। उसकी सब सिफ़ारिशें असफल होंगी। उसकी सब मिन्नतें बेकार जायेंगी। और फिर वह किसी आते-जाते अफ़सरके सामने हाथ जोड़ेगा। और कलका पढ़ा हुआ कोई छोकरा उसको डांट देगा। उसको, जिसके घर औरत थी, सात बच्चे थे, एक जवान बेटी थी। डाँटेगा, झिड़केगा, चाहे धक्का देकर बाहर ही निकाल देगा।

और फिर।

और फिर।

और फिर उसकी आँखोंके आगे चक्कर आने शुरू हो गये। अँधेरा छा गया। उसको ऐसे लगा जैसे वह किसी गहरी खाईमें धँसता जा

रहा हो। किसी अँधेरे कुएँमें डूबता जा रहा हो। और फिर सहसा वह सिरसे लेकर पाँव तक काँप गया।

कोई एक मिनट भी नहीं गुज़रा था, अभी म्युज़ियमका नौजवान अधिकारी फ़ैसला भी नहीं कर पाया था कि उसके सामने हुई गुस्ताख़ी को वह कैसे भुलाये, अभी मैं सँभल भी नहीं पाया था, सोच भी नहीं सका था कि किस बातका मैं ज़िक्र करूँ ताकि यह अचानक उत्पन्न हो गई बदमज़गी म्युज़ियमके नौजवान अधिकारीको भूल जाय कि चौकी-दार हाथ जोड़े हमारे पीछे आता मुझे दिखायी दिया। वह म्युज़ियमके नौजवान अधिकारीको कह रहा था, 'यदि आपका हुक्म है तो मैं झाड़-पूँछ कर दिया करूँगा। मेरे पास झाड़न कोई नहीं। मैं अपने साफ़ेसे ही साफ़ कर दिया करूँगा अपने कमरे को।'

और इससे पहले कि उसको अपने अफ़सरकी ओरसे कोई उत्तर मिलता, सिरसे अपने साफ़ेको उतारकर वह चित्रोंके चौखटे और शीशेंको झाड़ने लगा।

म्युज़ियमका नौजवान अधिकारी मुझे समझा रहा था, मुग़लराजमें चित्रकला कितनी उन्नत हुई थी। मुग़ल राज...राजपूत कलम... कांगड़ाकी कलम...।

मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। मैं बार-बार म्युज़ियमके उस पीसकी ओर देख रहा था। अपने सिरसे उतारे साफ़ेके साथ वह बड़े ध्यानसे, बड़ी मुस्तैदीसे चित्रोंको साफ़ कर रहा था। खिड़कियोंको झाड़ रहा था। उसके सिर पर सफ़ेद-काले बालोंकी उसकी चोटी जैसे काँप-काँप रही थी।

टैरेस

टैरेसपर खड़े होकर दूर क्षितिज तक नीला आकाश दिखायी देता। सामने मीलों तक फैली हुई झील दिखायी देती। नीचे सड़क दिखायी देती जिस पर अँधेरे सवेरे लोग चलते रहते। टैरेस पर खड़े होकर शीतल मीठी हवा आ कर उसके अङ्ग-अङ्गसे खेलने लगती। झीलको अठखेलियाँ कर रही लहरोंका संगीत उसके कानोंमें सुनाई देता। गहरे आकाशमें कभी सफ़ेद-सफ़ेद बदलियाँ तैर रही होतीं, कभी घनघोर काली घटाएँ छा जातीं। टैरेसपर खड़े होकर उसपर एक जादू-सा हो जाता।

इस फ़्लैटमें टैरेस ही तो थी। बाक़ी कमरे केवल दो थे। तंगसे, घुटे-घुटेसे। एक उनके सोनेका कमरा था, दूसरा गोल कमरा भी था और खानेका भी। बच्चों वाले घरमें दो कमरोंसे कैसे गुज़ारा हो सकता है!

माया सारा दिन घरके जंजालमें फँसी रहती। कभी कुछ, कभी कुछ। एक चीज़को ठीक करती दूसरी ख़राब हो जाती। उसको सँवारती कोई और चीज़ बिगड़ जाती। जितना घर छोटा हो उतना गन्दा ज़्यादा लगता है। हर समय उसके हाथमें या झाड़ू होता, या झाड़न होता, या उसका गन्दगीसे मन ऊब रहा होता। बच्चोंने वहींपर खेलना होता, वहीं पढ़ना होता, वहीं आराम करना होता। जो चीज़ माया जहाँ रखती फिर उसे उस स्थानपर कभी न मिलती; और उसका दिल घबराने लगता। दिल घबराने लगता तो घबराता ही जाता। गुसल-ख़ाना छोटा था; नहा कर तो उसमेंसे कोई निकल आये, किन्तु जब किसीको कपड़ोंकी एक गठरी धोनी हो तो बुरा हाल होता था।

ग़ुसलख़ाना तो फिर भी ग़नीमत था। रसोईकी हालत उससे भी ख़राब थी। जैसे कबूतरोंका दड़बा हो। हर घड़ी अंधेरा, हर घड़ी धुआँ। लाख शिकायत वह कर बैठे लेकिन मकानका मालिक अंगीठी ठीक नहीं करवाता था। जितनी देर माया रसोईमें रहती उसकी आँखोंमेंसे झर-झर अश्रु बहते रहते। सोनेवाले कमरेमें उन्होंने चारपाइयोंके नीचे चारपाइयाँ बिछाई हुई थीं। जब रातको सबके बिस्तर बिछ जाते तो खटिया से नीचे उतरनेके लिए जगह ढूँढ़नी पड़ती थी।

और उधर बच्चोंकी ज़रूरतें ख़त्म होनेमें नहीं आती थीं। किसीको भूख लगती, किसीको प्यास लगती, किसीको सब्ज़ी अच्छी लगती, किसीको सब्ज़ी अच्छी न लगती। किसीके पेटमें दर्द होता, किसीकी आँखें आ जातीं, किसीका पाजामा फटा हुआ होता, किसीके बटन टूटे हुए होते। यदि बच्चे हँसते तो हँसते ही जाते। हँस-हँस कर घर सिर पर उठा लेते। जब रोते तो सब रोने लगते। मारनेवाला भी रोता, मार खानेवाला भी रोता। छुड़ानेके लिए बीचमें पड़ा भी रो रहा होता। खेलते समय इस तरहकी उलटी-सीधी खेलें खेलते कि कोई चीज़ घरमें अपने स्थानपर न रहती। कभी किसीका जन्म दिन, कभी किसीका जन्म दिन। कभी किसीके मित्रका जन्म दिन, कभी किसीकी सहेलीका जन्मदिन। माया सोच-सोच कर, ख़रीद-ख़रीदकर चीज़ें हार जाती। कभी परीक्षा होती, कभी छुट्टियाँ होतीं। कभी बच्चे बाहर ले जाये जाते, कभी नाटककी तैयारियाँ होतीं। कभी कुछ, कभी कुछ। एक न एक समस्या सदैव मायाके सामने धरी रहती।

और माया सारा दिन जोड़-तोड़ करती रहती। इधरसे बचाती उधर ख़र्च करती। एकसे छीनती दूसरेका काम चलाती। कभी रसोईमें सिर दिये रखती, कभी ग़ुसलख़ानामें। वहाँसे अवकाश पाती तो कमरोंको सँवारने लग जाती। जिस स्थानपर पाँव रखती जैसे दस

काम उसकी प्रतीक्षा कर रहे होते। और माया दिन भर मिट्टीके साथ मिट्टी होती रहती। घरकी मुसीबतोंमें उसका अंग-अंग दुखने लगता।

किन्तु इस फ़्लैटपर एक टैरेस थी जहाँ आकर जब वह खड़ी होती तो उसका हृदय फूलकी तरह हलका हो जाता। झीलकी मीठी-मीठी हवा, लहरोंका मधुर संगीत, दूर-दूर तक फैला हुआ आकाश। उसका मन शान्त हो जाता। उसे ऐसे लगता जैसे उसके आस-पास सुगन्धियाँ बिखर गयी हों।

टैरेसपर खड़ी हवा उसके बालोंके साथ आकर खेलती और उनमें एक रौनक आ जाती। टैरेसपर खड़ी होकर दूर-दूर तक खुले आकाश को वह देखती और उसके नैनोंमें चमक आ जाता। टैरेसपर खड़ी उसके गालोंमें लाली दौड़ने लगती, उसके होंठ रस-रस करने लगते।

टैरेसपर खड़ी माया सोचती हर जीवनमें एक टैरेस होना चाहिए। जीवनके तङ्ग, घुटे-घुटे कमरोंके बाहर एक फैलाव जहाँसे खुला गहरा आकाश नज़र आये। जहाँ दूर बहुत दूर कोई गा रहा सुनाई देने लग जाये। जहाँ अछूती अनसूँघी हवा आकर उन्मत्त बना दे।

और जब मायाको अवकाश होता, जब उसका जी घुटने लगता, जब वह घरकी उलझनोंसे थकती तो बाहर टैरेसपर आकर खड़ी हो जाती। चाँदनी रातोंमें बाहर टैरेसपर खड़े होकर अपने पतिकी प्रतीक्षा करना उसे बुरा न लगता। सावनकी लम्बी झड़ियोंवाले दिनोंमें टैरेसपर अकेली खड़ी उसे भीग भीग जाना अच्छा लगता। दिनको जब बच्चे स्कूल चले जाते, उसका पति कामपर चला जाता, टैरेसपर खड़ी उसको घरका सूनापन, सूनापन न महसूस होता।

रसोईके धुएँसे, गुसलखानेकी तङ्गीसे, कमरोंकी घुटनसे जब माया का दिल घबराने लगता तो वह बाहर टैरेसपर आकर खड़ी हो जाती। बच्चोंके शोरसे, पैसोंकी थोड़से, घरके धन्धोंसे जब वह थक जाती, माया

बाहर टैरेसपर आकर सुस्ता लेती। अन्धेरे-सवेरे किसी समय टैरेसपर खड़े होकर वह एक उन्मादमें खो जाती। सारीकी सारी वह नशे-नशेमें उन्मत्त-सी हो जाती।

टैरेसपर एक क्षण खड़ी होकर अन्दर आई माया शीशेमें अपने आप को देखती, उसे अपना आप अच्छा-अच्छा लगने लगता।

इस तरह जीवनकी गाड़ी इस विचित्र सहारेपर चल रही थी कि एक दिन टैरेसपर खड़ी मायाने देखा सामने सड़कपर कोई पुरुष उसकी ओर घूर रहा था। मायाको इस तरह किसी पराये मर्दका उसकी ओर देखना अच्छा न लगा और वह अन्दर चली गयी। उस साँझ फिर टैरेसपर खड़ी मायाकी दृष्टि सड़कपर पड़ी। वही मर्द फिर खड़ा उसकी ओर देख रहा था, जिस तरह किसी पराये आदमीको किसी परायी औरतकी ओर नहीं देखना चाहिए। माया फिर जल्दी-जल्दी अन्दर घरमें चली गयी। रातको सोनेसे पहले उसने देखा चाँदकी दूध-सी सफ़ेद चाँदनी चारों ओर फैल रही थी। अपने आप उसके पग उसे बाहर टैरेसपर ले गये। अभी टैरेसपर जाकर वह खड़ी हुई थी कि वही सवेरेवाला पराया मर्द वैसेका वैसा सड़कपर खड़ा हुआ उसे अपनी ओर ताक रहा दिखाई दिया। उसकी नज़रोंमें पाप था, उसके इशारोंमें कपट था। मायाने उसकी ओर देखा और उसे सहसा एक झटका-सा लगा और वह बदमज़ा-सी, सहमी-सी, कसमसाती-सी, अन्दर कमरेमें आ गयी।

फिर हर रोज़, हर समय वह आदमी वहाँ खड़ा होता। और माया-की टैरेस उससे छिन गयी।

माया अब चिढ़ी-चिढ़ी-सी रहती, थकी-थकी-सी रहती, उलझी-उलझी-सी रहती। लाख मेहनत करके वह बाल सेट करती, घरके [illegible]में कहीं पका रही, कहीं धो रही, कहीं झाड़-पूँछ कर रही, कभी, कुढ़ रही, कभी खीझ रही, दो दिनमें उसके बाल फिर सीधे हो

जाते। उनके घुँघर निकल आते। और उसे याद आता कि टैरेसपर खड़े होकर उसके उलझे हुए, अनसँवारे बालोंमें भी रौनक आ जाती थी। जिन दिनों वह टैरेसपर जाकर सुसता लिया करती थी उसके एक बार सेट किये बाल हफ़्ता-हफ़्ता चल जाया करते थे।

माया सोचती वह अपने पतिको कहे वह पुरुष क्यों सड़कपर आकर खड़ा हो जाता था। सुबहसे लेकर साँझ तक, अंधेरा पड़े तक वहाँ खड़ा रहता था। पर तीन बच्चोंकी माँ माया अपने पतिको क्या कहती ? उसे बार-बार अपनी एक सहेलीके बोल याद आते—'दूधपर मक्खी अवश्य आती है'। और माया सोचती जब तक कहीं मीठा है मक्खियोंको कैसे रोका जा सकता है! वह मर्द नहीं खड़ा होगा तो और कोई आकर खड़ा हो जाएगा। किस-किसको वह रोकेगी, किस-किस से उसका पति लड़ाइयाँ लड़ेगा।

और मायाकी टैरेस उससे छिन गयी।

फिर मायाने सोचा, नीचे घरकी चारदीवारीको यदि ऊँचा करवा दिया जाए तो सड़कसे खड़े होकर कोई उसको नहीं झाँक सकेगा। और उसे ऐसा लगा जैसे यह बात अत्यन्त सहल हो। उसने अपने पतिको कहा। उसके पतिने किसी मिस्त्रीसे पूछा। चारदीवारीको ऊँचा करनेमें डेढ़ सौ रुपया ख़र्च आता था। मायाने सुनकर चुप साध ली। मालिक मकान डेढ़ सौ रुपया कहाँ ख़र्च करने लगा था। और स्वयं अपने पतिके वेतनसे इतनी रक़म माया न कभी बचा सकी थी, न वह सोचती, कभी बचा सकेगी।

और मायाकी टैरेस उससे छिन गयी।

कभी माया सोचती उसे उस पुरुषसे क्या डर था, और निडर होकर वह टैरेस पर जाकर खड़ी हो जाती। पर फिर जब उसे किसीकी झाँक रही दो आँखोंका ख़्याल आता तो उसे ऐसे लगता जैसे वह अन- ढकी-अनढकी हो, नंगी-नंगी हो, और वह सहसा सिरसे लेकर पाँव तक

काँप जाती। और अपना फूला हुआ सांस लेकर अन्दर कमरेमें पलंगपर औंधी जा पड़ती। और तब तक वैसीकी वैसी पड़ी रहती जब तक घरकी दस ज़िम्मेदारियाँ उसको फिर अपने आपमें न उलझा लेतीं।

मायासे मायाकी टैरेस छिन गयी थी।

कई दिन इस तरह गुज़र गये। फ़िक्रोंके दिन, उलझनोंके दिन, बदमज़गीके दिन, मुसीबतोंके दिन, पग-पगपर खीझ-खीझ पड़नेके दिन। और फिर माया जैसे अपनी टैरेसको भूल गयी। और अब जब मायाने टैरेसपर खड़ा होना छोड़ दिया, बच्चोंके कपड़े धोती, सुखाती वह उनको इस्त्री भी करती। खाना पकाकर उसको बरतनोंमें सजाती, अच्छी तरह परोसकर खानेवालोंके सामने रखती। हर रोज़ सोच सोचकर कोई नयी सुन्दरता पैदा करती, अपने आपमें, अपने घरमें, अपने बच्चोंमें। जितनी देर बच्चे घर होते, समय निकालकर उनके साथ खेलती, उनकी पढ़ाईमें मदद देती। जितनी देर उसका पति घर होता उसकी छोटी-छोटी आवश्यकताओंको पहलेसे ही सोचकर पूरा करती रहती।

इस तरह जब मसाला भून रही होती तो माया विशेष रूपसे ध्यान रखती कि वह ठीक भुने। न कच्चा रहे न जले। एक विशेष रंग, एक विशेष सुगन्ध उसमेंसे आये। और यदि मसाला ठीक भुन जाए तो फिर भाजी कभी खराब नहीं होती। उसकी बनाई हुई रोटियाँ अब सारी-की-सारी गोल होतीं, सिकी हुई होतीं। रसोईकी अंगीठीमें से धुआँ यदि अब भी नहीं निकलता था मगर मायाके चूल्हेमें धुआँ आजकल होता ही नहीं था। अब उसका दूध समयपर आता, दही ठीक जमती। अब माया पड़ोसियोंको कुछ भेजती रहती, उनकी ओरसे इसके यहाँ कुछ आता रहता।

अब माया जब बच्चोंके कपड़े धोने बैठती सबके सब कपड़े एक गठरीके रूपमें उसको नज़र न आते। हर कपड़ा किसी न किसीका होता,

किसी न किसी जानके टुकड़े का। अब माया जब पकाने बैठती; कोई चीज़ किसीको ख़ुश करनेके लिए पकाती, कोई चीज़ किसीकी प्रशंसा लेनेके लिए बनाती। अब माया जब घरमें शोर सुनती उसको हर बात प्यारी लगती, हर बोलमें संगीत सुनाई देता।

घरके कमरे अब मायाको घुटे-घुटे तंग-तंग न लगते। मायाका दिल जो बड़ा हुआ तो जैसे कमरे भी फैलकर बढ़ गये। अब माया हर पल ख़ुश ख़ुश रहती, ख़ुशियाँ बखेरती रहती। मायाका हर काम अब समयपर होता। हर बात ठीक होती, ठीक और कुछ अधिक। अब माया हर बात पूरी करती, पूरी और कुछ ज़्यादा। जैसे छत होती है और छतके आगे पेश-छत होती है—टैरेस।

सुन्दरी

सुन्दरी और उसका पति दोनों ही पहले एम० ई० एस० के दफ़्तर में नौकर थे। सवेरे दफ़्तर खुलने से पहले और साँझ को दफ़्तर बन्द होनेके बाद, पति-पत्नी मिल कर दफ़्तरकी सफ़ाई करते। दिनमें पति बरामदों में फिरता हुआ कूड़ा करकट उठाता रहता और सुन्दरी बगीचेमें पीपलके नीचे बैठी उसे देखती रहती।

इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीत गये। पन्द्रह वर्ष हुए सुन्दरीके पति ने उसके साथ विवाह किया था। और विवाहके एक दिन बाद ही उसे अपने दफ़्तरमें नौकर रखवा लिया था। सुन्दरीकी आयु उस समय बीस सालकी थी। सुन्दरी बारह सालकी थी जब एक सहेली का विवाह देखकर उसके जीमें आया कि उसकी भी बारात आये, उसका भी ब्याह हो, फिर उसे भी लोग जमादारिन कह कर पुकारें। पर अपनी इस इकलौती बेटीको मां-बापने पूरे आठ साल और बांधे रखा। लड़के वाले उनके द्वारके चक्कर काटते रहे। और फिर अपने सरपंचके इकलौते बेटेके लिए सुन्दरीकी मां पसीज गई।

सुन्दरीका पति 'जमादार' मां बापका इकलौता बेटा था। सुन्दरी स्वयं भी मां बाप की इकलौती बेटी थी। और उनके मां-बाप, उनके सम्बन्धी, उनके पड़ौसी उनके मुँहकी ओर तक तक कर थक गये, सुन्दरी की गोद हरी न हुई।

और पन्द्रह साल एम० ई० एस०के दफ्तरमें काम करनेके बाद सुन्दरी और उसके पति की बदली स्त्रियोंके अस्पतालमें हो गई।

अस्पतालका काम सुन्दरीको बड़ा अच्छा लगा। न अब उन्हें एम० ई० एस० के दफ्तरके बाबुओंकी जगह-जगह पड़ी पानकी पीकें

धोनी पड़तीं न उनके जगह-जगह बिखरे कागज़ोंको संभालना पड़ता, न लापरवाहीसे फेंके सिग्रेट बीड़ियोंके टुकड़े बार बार उठाने पड़ते। यहाँ अस्पतालमें सुबह-शाम पति-पत्नी सफाई करते। दोपहरको सुन्दरी डाक्टरके कमरेके बाहर बैठी ऊंघती रहती। पहले एम० ई० एस०के दफ्तरमें सुन्दरी पीपलके नीचे बैठी रहती थी, अब उसका पति अस्पतालके आंगनमें लगे नीमके पेड़के नीचे बैठा सुन्दरीकी प्रतीक्षा करता रहता।

नीमके पेड़के नीचे बैठा बैठा सुन्दरीका पति कभी कभी सोचता कि अगर उनका कोई बच्चा होता तो आज उनको काम करनेसे छुटकारा मिल गया होता।

और लेडी डाक्टरके कमरेके बाहर बरामदेमें बैठी सुन्दरीकी नज़र हर मरीज़के पेटकी ओर जाती। छोटे छोटे बढ़े हुए पेट, बड़े बड़े बढ़े हुए पेट, सुन्दरी अन्दर जाते देखती रहती, बाहर जाते देखती रहती। अपने पेटकी झुर्रियाँ उसे कभी इतनी बुरी नहीं लगी थीं। लेडी डाक्टर को मिलनेकी प्रतीक्षा करनेवाली स्त्रियाँ बरामदेमें खड़ी या तो पैदा होनेवाले बच्चोंकी बातें करती रहतीं या फिर पैदा हो चुके बच्चोंकी बातें करती रहतीं। स्त्रियोंकी इधर उधरकी बातें। किसीको बच्चे हुए जा रहे थे, हुए जा रहे थे। किसीको बच्चा होता ही न था। किसीको लड़कियाँ ही होती थीं, लड़के नहीं। किसीको लड़के ही होते थे, लड़कियां नहीं।

सुन्दरी देख देखकर हैरान होती कि स्त्रियोंके हस्पतालमें पैदा होने वाले बच्चोंका कितना ध्यान रखा जाता है। मां बननेवाली स्त्रियोंको सफ़ेद कपड़े पहने हुए लेडी डाक्टर कितने ध्यानसे देखती। विलायती पलंग पर लिटा कर उनका निरीक्षण करती। बच्चेके पैदा होनेसे पहले बच्चेके स्वास्थ्यके लिए माँको टीके लगाये जाते, दवाइयां पिलाई जातीं, उनको चलने फिरनेका ढंग सिखाया जाता, बैठनेका तरीक़ा समझाया

जाता, लेटनेका अन्दाज़ बताया जाता। चाहे कोई ग़रीब होती चाहे अमीर, हर होनेवाली मांसे लेडी डाक्टर हँस हँस कर बातें करती। सेना के इस सरकारी अस्पतालमें हर एकका मुफ़्त इलाज किया जाता। बच्चा पैदा होनेसे पहले, बच्चा पैदा होते समय और बच्चा पैदा होनेके बाद अंग्रेज़ी पढ़ी डाक्टर, गोरी चमड़ी वाली सफ़ेद कपड़ोंमें लिपटी नर्सें मरीजोंके आगे पीछे फिरती रहतीं। जिस कमरेमें बच्चा होनेसे पहले जाकर स्त्रियां बैठतीं वह कमरा अलग था। इसकी दीवारों पर हंसते खेलते बच्चोंकी तस्वीरें टंगी हुई थीं। जिस कमरेमें बच्चा होनेके समय उन्हें ले जाया जाता वह कमरा अलग था। हर प्रकारके इलाजका वहाँ प्रबन्ध था। जिस कमरेमें बच्चा होनेके बाद स्त्रियां रहतीं, वह कमरा और था। फूलोंसे महकता हुआ, गर्मियोंमें उसे ठंडा और सर्दियोंमें उसे गर्म रखनेका प्रबन्ध था।

सुन्दरी देखती कि हंसती खेलती स्त्रियाँ अस्पतालकी मोटरोंमें बैठकर जातीं और फिर आठ दस दिन बाद हंसती खेलती झोली भरवा कर मोटरोंमें वापस चलीं जातीं। कई ग़रीब बच्चोंको डाक्टर अस्पतालसे कपड़े देती, खिलौने देती, स्वस्थ बनानेकी दवाइयां देती, और स्वयं बरामदेमें खड़ी मुस्कुराती हुई उन्हें विदा करती।

सुन्दरीको अस्पतालकी इंचार्ज लेडी डाक्टर बहुत ही प्यारी लगती। पतली, लम्बी, गोरी, सफेद कोट पहने जब वह मरीज़ों का हाल पूछती सुन्दरी सोचती कि वह एक नज़रमें दूसरेका दुख दूर कर देती होगी।। उसने सुन रखा था कि देशकी सबसे बड़ी पढ़ाई डाक्टरने पास कर रखी है। और पहली बार जब कानोंसे टूटी लगा कर सुन्दरीने डाक्टर को एक मरीज़का निरीक्षण करते देखा तो एक पलके लिए जैसे उसे समूची स्त्री-जाति पर गर्व सा अनुभव हुआ था। डाक्टर हस्ताक्षर करता तो नर्सोंको वेतन मिलता, मालीको वेतन मिलता, चौकीदारको वेतन मिलता, जमादार, उसके पतिको पैसे मिलते। जमादार डाक्टरसे

बहुत डरता था। जब कभी कोई छोटी-मोटी त्रुटि रह जाती, सुन्दरी उसे और भी डराती रहती। डाक्टरसे डर रहा उसका पति उसको यों लगता जैसे वह स्वयं सुन्दरीसे डर रहा हो।

सुन्दरीको डाक्टर बहुत ही अच्छी लगती थी। जब कभी उसको फुर्सत होती, सुन्दरी डाक्टरकी कुर्सीके पास नीचे फर्शपर बैठ जाती और इधर-उधरकी बातें करती रहती। डाक्टर किताब भी पढ़ती जाती, डाक भी देखती जाती, चिट्ठियोंपर हस्ताक्षर भी करती जाती और साथ-साथ सुन्दरीकी बातें भी सुनती जाती।

एक दिन सुन्दरी बरामदेमें बैठी बारी-बारी मरीजोंको डाक्टरके पास अन्दर भेज रही थी कि उसने देखा कि जिस दफ्तरमें वह पहले काम करती थी, वहाँके एक चपरासीकी पत्नी आई है। अपनी बारी आने पर वह भी अन्दर डाक्टरके पास गई। चिकके बाहर सुन्दरी झाँक-झाँककर देखती रही। डाक्टरने सबकी तरह चपरासीकी पत्नीको देखा। उसे दवाई दी और फिर वह खुश-खुश वापस चली गई।

कोई दो दिन बाद रातको घण्टी बजी। सुन्दरीने आकर देखा, अस्पतालके आँगनमें खड़ी अस्पतालकी मोटरसे वही चपरासीकी पत्नी निकल रही है। डाक्टरको जगाया गया। नर्स आई। डाक्टरने फिर उसे देखा और उसे विलायती पलंगपर लिटा दिया गया। कोई तीन घण्टेके बाद उसे बच्चा हुआ। सारा समय दो नर्सें वहाँ मौजूद रहीं। सुन्दरी बाहर ड्यूटीपर बैठी रही। बच्चा होनेके बाद डाक्टरने फिर उसका निरीक्षण किया। फिर वार्डमें दूध-सी सफेद चादरवाले एक पलंग पर उसे लिटा दिया गया।

सुन्दरी बार-बार उस नई माँके मुँहकी ओर देखती, कमरेकी ओर देखती, बिजलीके बल्बोंकी ओर देखती, तिपाइयों पर मेज़पोशोंकी ओर देखती, फूलदानोंके फूलोंकी ओर देखती, उस पलंगकी ओर देखती

जहाँ चार दिन हुए एक बड़े अफ़सरकी पत्नी बच्चेके जन्मके बाद लेटी रही थी।

जितने दिन चपरासीकी पत्नी अस्पतालमें रही, उसे दूसरोंकी तरह खुराक मिलती रही, दूसरोंकी तरह उसकी चादरें बदलती जाती रहीं, दूसरोंकी तरह उसके बच्चेसे लाड-प्यार होता रहा।

एक दिन सुन्दरीने सुना, लेडी डाक्टर एक नर्सको समझा रही थी—'हमारे लिए सब मरीज़ बराबर हैं, चाहे कोई अमीर हो चाहे ग़रीब'। सुन्दरी यह सुनकर फूलकी तरह खिल उठी। उसको डाक्टर हमेशा बड़ी अच्छी लगती थी। उस दिनसे और भी अधिक अच्छी लगने लगी।

उस वर्ष वसन्त पञ्चमीको डाक्टरने अस्पतालमें बच्चोंका एक मेला किया, जिसमें हर आयुके बच्चे आये। उस साँझ जमादारनी सुन्दरसे सुन्दर बच्चोंको देखती रही, गोल गुदाज़ बाहोंवाले बच्चे, खिलखिलाते ख़ुशियाँ बिखेरते मुसकराते बच्चे, फूलकी पत्तियोंकी तरह कोमल होठोंवाले, काली भौंराली मोटी आँखोंवाले, चौड़े माथोंवाले बच्चे, मचल-मचल पड़ते बच्चे जो माताओंसे सँभाले न सँभलते, नटखट बच्चे जो काबूमें न आते, लड़के जिन्हें सेनाकी वरदी पहनाकर माताएँ लाई थीं, लड़कियाँ जिन्हें परियोंकी तरह सजाया गया था। फिर बच्चे खेलते रहे—लड़कोंवाली खेलें, लड़कियोंवाली खेलें। कुछ बच्चोंने तोतले स्वरमें गाने सुनाये। लड़कियाँ देर तक नाचती रहीं। अन्तमें इनाम बाँटे गयेः सबसे सुन्दर, सबसे स्वस्थ, सबसे तेज़, सबसे अच्छे गानेवाले को, सबसे अच्छा नाचनेवाले को। एक इनाम चपरासीके उस बच्चेको भी मिला जिसका बाप सुन्दरी और उसके जमादार पतिके साथ एम० ई० एस०के दफ़्तरमें काम करता था। हस्पतालमें पैदा हुआ वह बच्चा कितना गोरा, कितना मोटा, कितना स्वस्थ था!

बाद मेलेके अगले दिन काम-काजसे निपटकर डाक्टर बैठी थीं कि सुन्दरी झिझकती झिझकती अन्दर आई। पहले वह चुपचाप खड़ी रही, फिर कुर्सीके नीचे फर्शपर बैठ गई। जब डाक्टरने सुन्दरीकी तरफ़ देखा तो सुन्दरी हँसने लगी। डाक्टरने भांप लिया कि ज़रूर कोई बात है और वह सुन्दरीसे बार बार पूछने लगी। आखिर सुन्दरी बोली: 'डाक्टर साहब, आपने उस चपरासिनकी इतनी देख भाल की, अगर मेरे बच्चा हो तो मेरा भी आप इलाज करेंगी।' और फिर सुन्दरी हँसने लग गई।

'क्यों नहीं', डाक्टरने सुन्दरीको विश्वास दिलाते हुए कहा, 'तुम सरकारी नौकर हो, और इस सरकारी हस्पतालमें चाहे कोई अफ़सर हो चाहे चपरासी, चाहे जमादार सबका इलाज होता है।'

हँसती हुई सुन्दरी डाक्टरकी यह बात सुनकर बाहर निकल आई। हँसते हँसते उसने सारी बात नर्सको जा सुनाई। नर्सने भी उसे विश्वास दिलाया कि सुन्दरीका इलाज भी बिलकुल दूसरोंकी तरह होगा, दूसरोंकी तरह सुन्दरीको भी विलायती पलंगपर लिटाया जायगा, दूसरोंकी तरह सफ़ेद कोट पहने, अंग्रेज़ी पढ़ी लेडी डाक्टर आकर उसका सारा काम करेगी, दूसरोंकी तरह वार्डमें उसे जगह मिलेगी, दूसरोंकी तरह सुन्दरीको भी यखनी पीनेको मिलेगी, फल मिलेंगे, दूध मिलेगा, और यह सारा ख़र्च सरकार उठायेगी। सुन्दरी सुनती जाती और हँसती जाती। हँस हँसकर वह पागल हो रही थी।

हँसती हँसती वह अपने क्वार्टरमें पहुँची और अपने पति ज़मादारको सारी बात सुनाने लगी। ज़मादारसे बात करते समय, सुन्दरीकी हँसी जैसे एक दम उड़ गई। पत्नीने एक बात कही, पतिने उसे सुना, और फिर कितनी देर दोनों एक दूसरेका मुँह देखते रहे, देखते रहे।

कई दिन बीत गये। सुन्दरी अपना काम हमेशा दिल लगाकर करती थी। दूध सी सफ़ेद चादरोंवाले पलंगोंको, दूधसे सफ़ेद तकियोंको

देख देख कर सुन्दरी फर्शोंको और अधिक रगड़ती, बरतनोंको और अधिक माँझती।

इसी तरह एक दिन बच्चोंके वार्डकी सफ़ाई करते करते सुन्दरी कुछ इस तरह खो गई कि अस्पताल खुल गया, मरीज़ आने शुरू हो गये और सुन्दरी अभी तक खिड़कियोंके शीशे रगड़ रही थी, पालनोंको झाड़ रही थी, दरवाज़ोंके कब्ज़ों और कुंडियोंको चमका रही थी।

डाक्टरने सुन्दरीको एक बार आवाज़ दी। सुन्दरी कहीं नज़र नहीं आई। डाक्टरने फिर पुकारा। सुन्दरीका कुछ पता नहीं था। अन्तमें नर्स उसे ढूँढ़कर ले आई। बाहर बरामदेमें बैठी सुन्दरी मरीज़ोंको हर रोज़की तरह बारी बारी अन्दर भेजती रही, छोटे छोटे बढ़े हुए पेट, बड़े-बड़े बढ़े हुए पेट।

अभी सारे मरीज़ ख़त्म नहीं हुए थे कि सुन्दरीके मनमें कुछ आया और अगली बार वह स्वयं डाक्टरके सामने जा खड़ी हुई।

'क्यों सारे मरीज़ निपट गये?' डाक्टरने सुन्दरीको देखते ही पूछा।

'नहीं।'

सुन्दरी तो आज स्वयं एक मरीज़ थी।

'तुझे क्या हो गया है इस उम्रमें?' डाक्टरने हँसते हुए सुन्दरी को छेड़ा।

पर सुन्दरी अपने हठपर दृढ़ थी।

अन्तमें विलायती मेज़पर लिटाकर डाक्टरने सुन्दरीका निरीक्षण किया। जैसे-जैसे डाक्टर सुन्दरीको देखती, डाक्टरकी हैरानी बढ़ती जाती। और फिर डाक्टरके होठोंसे मुसकुराहट न रुक सकी।

डाक्टरने बड़ी नर्सको बुलाया, फिर छोटी नर्सको बुलाया, फिर तीसरी नर्सको बुलाया और हँसते-हँसते उन्हें कहा, 'सुन्दरीसे मिठाई खाओ, सुन्दरी माँ बननेवाली है।'

और सुन्दरीके रोम-रोमसे खुशियाँ फूट रही थीं।

जीवन क्या है

देशमें टिड्डीदल उतरा हुआ था। आस-पासके इलाकोंसे फ़सलोंकी बरबादीके भयानक समाचार रेडियोपर भी सुननेमें आते थे, समाचार पत्रोंमें भी छपते थे और सरकारी ढंढोरची भी आ-आ कर लोगोंको बता बता जाते थे।

शेरा सोचता कि देशमें पहले ही अनाजकी कमी है और शेरेकी पत्नी ईसरोका दिल डूब-डूब सा जाता। पक्की अलाटमेण्टके बाद, उनकी यह पहली फसल थी। अगर टिड्डी आ गई तो वे स्वयं क्या खायेंगे, आनेवाले प्राणीके मुँहमें क्या डालेंगे। एक ओर वह अपना बढ़ा हुआ पेट देखती, दूसरी ओर टिड्डियोंकी बरबादीकी कहानियाँ सुनती, ईसरो सोचती, अगर धरती कहीं फटे तो वह उसमें समा जाए।

उसे न खाना अच्छा लगता, न पहनना। सारा-सारा दिन वह विचारोंमें खोई रहती। यह कैसा जीव उनके घर आनेवाला है! उसकी आँखोंसे नींद उड़ गई।

फिर समयसे पहले ही ईसरोने काम छोड दिया। समयसे पहले ही ईसरो पलँगपर पड़ गई, समयसे पहले ही उसे प्रसवपीड़ा शुरू हो गयी, समयसे पहले ही उसके बच्चा हो गया।

शरफो दाईने हज़ार जतन किये मगर ईसरोका पुत्र न हिला न बोला न उसने आँख खोली। सुबहसे दोपहर हो गयी और वह पत्थरका पत्थर पड़ा हुआ था। शरफो कभी उसे उलटा करती, कभी उसे टेढ़ा करती, कभी उसकी पीठ ठोंकती, कभी उसकी आँखें खोलती, पर वह निश्चल मांसका लोथड़ा जैसेका तैसे पड़ा रहा। जो पियव्वा दाईने

बच्चेके मुँहमें डाला था पता नहीं वह हलकसे उतरा था, पता नहीं बाहर ही रह गया।

दोपहर गुज़र गयी, शाम गुज़र गयी, रात गुज़र गयी, फिर दिन चढ़ आया। बच्चा साँस ले रहा था, नब्ज़ अभी तक चल रही थी, मगर न उसने आँखें खोलीं न वह रोया चिल्लाया, न उसने हाथ पाँव हिलाया।

चिन्तासे डूबे हुए ईसरोके पति और ईसरोकी समझमें कुछ न आ रहा था कि वे क्या करें, क्या न करें कि कोई ग्यारह बजेके लगभग गाँवमें हाहाकार मच गया—'टिड्डी आ गयी, टिड्डी आ गयी'। दौड़कर आँगनमें शेरेने आकाशकी ओर देखा। जैसे एक बदली फैल रही हो, जैसे तूफान छा रहा हो। सामने परछाईं दौडती हुई आ रही थी। टिड्डीदल आ रहा था, एक तूफान की तरह, एक आँधी की तरह, एक अटल भीत की तरह।

क्षण भरके लिए शेरा आँगनमें खडा-खडा मानो निष्प्राण सा हो गया। उसकी आँखोंके आगे अन्धेरा सा छा गया। उसे ऐसा लगा मानो सब कुछ उसे फिरसे शुरू करना होगा। बेलसे टूटी तुरईकी तरह उसका जी चाहा कि वह औंधा गिर पड़े।

और टिड्डी दल उसके सिर पर था, उसके आँगनमें था, उसकी छतपर था, सामने बबूलपर था, कमरोंमें घुसा जा रहा था, चुल्लू-चुल्लू भर, परिश्रमसे निकाले पानीपर पले हुए खेतोंपर था, हाथ फैला-फैला कर ईश्वरसे माँगी हुई वर्षाकी फ़सलपर था। नदीयोंकी तरह टूट रहा था, फुङ्कारता-फुङ्कारता बढ़ा आ रहा था।

फिर एक दम शेरा जैसे सपनेमेंसे झंझोडकर जगा दिया गया हो और सामने पड़े हुए खलीके कनस्तरको उठाकर डंडेसे बजाता, वह खेतोंकी ओर भाग उठा।

शेराको इस तरह बाहर जाते देख उसकी पत्नी अपनी सब चिन्ताओं को भूल उठकर खड़ी हुई। एक दिनके बच्चेकी माँ वैसे-का वैसा उस पत्थरको वहीं छोड़ बाहर खेतोंकी ओर निकल गयी। शेरा गया, शेरे की पत्नी गई, उनके पड़ोसी गये, मोहल्लेवाले निकले, फिर सारा गाँव टीन बजाता हू-हा हू-हा करता मीलों तक फैल गया। खेतोंके आस-पास लोग सूखे पत्ते, घासके ढेर और झाड़ियोंको इकट्ठा करके आग लगाते और खेतोंमें दौड़-दौड़कर बच्चे, मर्द, बूढ़े, जवान टिड्डियोंको उड़ाते।

दो-दो सालके बच्चे टीन उठाये हुए थे। बूढ़ी स्त्रियाँ टीन बजा-बजा कर थक जातीं तो अपने दोपट्टोंसे टिड्डियोंको उड़ाने लगतीं। युवक दौड़-दौड़ कर भाग-भाग कर पागल हो रहे थे।

टिड्डियोंके एक दलको उड़ाते कि इतनेमें एक और झुण्ड आँधीकी तरह छा जाता।

कई-कई कनस्तर, कई-कई टीन, कई-कई डिब्बे लोगोंने पीट-पीटकर टेढ़े-मेढे कर दिये, तोड़ डाले। इस तरह दौड़ते, इस तरह शोर मचाते, दोपहर हो गयी, दोपहर ढल गयी। किसानोंके नंगे पाँव काँटोंसे छलनी हो गये। स्त्रियोंकी कलाइयाँ थक-थक कर सूज रही थीं। बच्चे बार-बार माँ बापकी घबराहटको देखते, इस अपरिचित शोरको सुनते, इस नये तूफ़ानको महसूस करते और फिर अधिक तेज़ीसे टीनोंको बजाने लगते।

और शेरा खेत-खेतमें भागता हुआ लोगोंको समझा रहा था कि यदि एक बार टिड्डियाँ बैठ गईं तो अण्डे दे कर ही उठेंगीं। एक हरा पत्ता नहीं रहने देंगी। फसलोंको हड़प कर सवेरे उड़ जाया करेंगी और साँझ को फिर लौटकर गाँवके पेड़ोंपर बैठ जाया करेंगीं। इस मूज़ीके पाँव जमीनपर न पड़ने देना। शेरा ढंढोरा पीटे जा रहा था, और शेरेकी पत्नी टीन खटखटाती, खेतोंके एक छोरसे दूसरे छोरतक एक आवेशमें, एक नशेमें, एक लग्नमें ऐसे घूम रही थी मानो उसे कुछ हुआ ही नहीं।

शेरा सोचता कहानी वाली वह बात कदाचित् ठीक ही थी। मादासे नर अधिक तेज़ीसे हरियालीको खाता, बस जैसे कुतरता ही जाता। इस तरह खा-खा कर बदमस्त नर मादाकी ओर एक दृष्टि डालकर अपनी जिन्दगीका सफ़र ख़त्म कर लेता। और मादा तबतक जीती जब तक अण्डे न दे देती। मानो टिड्डीकी ज़िन्दगीका उद्देश्य खाना, खा कर अपनी नसलको बढ़ाना हो।

धुएँसे टिड्डियोंको घबराते देख किसान अपने घरोंमें सँभाल कर रखे हुए ईंधनको उठा कर ले आये और खेतोंमें धुँआ-ही-धुआँ कर दिया। बड़ी-बड़ी झाड़ियोंको आग लगा दी गयी। धुआँ-धुआँ-धुआँ, जैसे चारों ओर वह टिड्डियोंके साथ घमासान युद्ध कर रहा हो।

जाट मन्दिरोंके घड़ियाल उठा कर ले आये, गुरुद्वारोंके शंख ले आये। मोची, जुलाहे, बनिये, नाई, मज़दूर पेशा, नौकरी पेशा, स्कूलोंके अध्यापक, विद्यार्थी, लड़कियाँ, गाँवका नम्बरदार, ज़ेलदार, पटवारी, चौकीदार, जो कोई भी था खेतोंमें दौड़ रहा था, शोर मचा रहा था। जिनकी जमीनें थीं वे भी थे जिनकी नहीं थीं वे भी थे।

शेरेने देखा छुट्टी पर आये पुलिस कप्तानकी मेमोंकी तरह गोरी चिट्टी औरत जो सुर्खियाँ लगाती थी, पौडर मलती थी, काली ऐनक पहने अपनी हवेलीके पीछे अपनी रंग-बिरंगी चुनरीसे टिड्डियोंको उड़ा रही थी। बार-बार उसके सिरका रेशमी दुपट्टा खिसक खिसक पड़ता और उसके सजे हुए बाल चमक चमक उठते। और शेरेको यह बिल्कुल भूल गया था कि पुलिस कप्तानकी वह अप्सराओं जैसी पत्नी हमेशा पर्दे में रहती थी, जब कभी भी वह बाहर निकलती उसकी मोटरके चारों ओर पर्दे डाले जाते थे।

कोई हवामें बन्दूकसे फ़ायर कर रहे थे, गोले छोड़ रहे थे, पटाखे चला रहे थे। मिरासी अपने ढोल लेकर आये हुए थे और पीटते जा

रहे थे, पीटते जा रहे थे एक ऐसे ज़ोर और दर्दसे जो पहले कभी किसीने नहीं देखा था।

सामने रेलकी पटरी पर टिड्डियाँ ऐसे बैठी हुई थीं कि जब ट्रेन आई वह आगे न बढ़ सकी। टिड्डियोंकी तहकी तह जमी हुई थी। और लाईनों परसे गाड़ीके पहिए फिसल फिसल पड़ते। गाड़ी अभी रुकी हीं थी कि मुसाफ़िर उतरकर खेतों पर टूट पड़े।

रंग रंगके कपड़े, भाँति भाँतिके आदमी, औरतें, बच्चे, जैसे एक तूफ़ान आ गया, एक भूकम्प आ गया और देखते देखते मीलों तक बैठी हुई टिड्डियोंको उड़ा दिया गया या मार दिया गया।

फिर इंजनने सीटी दी और गाड़ी चल दी।

अब चाहे वह पहला-सा ज़ोर नहीं था लेकिन फिर भी टिड्डियोंके छोटे छोटे झुंड पीछेसे चले आ रहे थे और खाली पडी रेतली धरतीमें टिड्डियाँ जम सी गई थीं। शेरा और उसके साथी यह देख घबरा गये, वे तो अंडे दे रही थीं।

शेराने देखा, शेरेके साथ उसकी पत्नी ईसरोने भी देखा कि किस तरह मादा कोई नर्म-सी जगह चुनकर अत्यंत सुकुमारतासे अपने पिछले धड़को धीरेसे धरतीमें चुभो देती और अपनी अमानत धरतीको सौंपकर जैसे सुर्खरू होकर उड़ जातीं।

ईसरोने यह देखा तो उसके स्तनोंमें दूध उतर आया। अपनी कोखसे निकले बच्चेको सुबहसे भूली वह एक अपार आकर्षणसे खिंची घरकी ओर चल दी। हाँफती हुई जब वह अपने आंगनमें पहुँची तो अन्दर कमरेसे बच्चेके रोनेकी आवाज़ सुनाई दे रही थी। माँको अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। दौड़कर अन्दर जा कर उसने देखा खाट पर पड़े बच्चेसे टिड्डियाँ चिमटी हुई थीं। लातें मार मारकर बाहें

फूँक फूँककर, सिर हिला हिलाकर, चीख चीखकर बच्चा टिड्डियोंको हटाता और वह हट हटकर, फिर आ आकर उससे चिमट जातीं।

ईसरोने लपककर अपने दिलके टुकड़ेको छातीसे लगा लिया। चूमा चाटा, कमरेको बुहार बुहारकर टिड्डियोंको बाहर फेंका, बच्चेको नहलाया-धुलाया, दूध पिलाया, और माँ बेटा शेरेकी प्रतीक्षा करने लगे। शेरा, जिसकी हू-हाकी आवाज़ अभी तक खेतोंसे आ रही थी।

जब ढोल बजता है

ममूदने अखाड़ेमें मुक़ाबलेके पहलवानसे हाथ ही मिलाया था कि आँख झपकनेकी देरमें कुछ हुआ, और फिर तालियाँ बज उठीं। ममूद चित्त हो गया था। दर्शक तालियाँ पीटते गये, पीटते गये। ढेरी चकरी वालोंने अपने पहलवानको कन्धों पर उठा लिया। और ममूद अवाक् सा अखाड़ेमें टुकुर टुकुर देख रहा था कि यह हो क्या गया है? और दस आदमी जो उसके साथ आये थे, चुपके चुपके छँटने शुरू हो गये।

ममूद हैरान था। ढेरी चकरी वाला उसे कैसे पछाड़ सकता था? 'सुआँ' की भैंसोंके दूध पर पला हुआ ममूद नमाजें पढ़नेवाले ढेरी चकरीके पट्ठेसे हार गया! ममूदकी आँखोंके आगे चक्कर आने शुरू हो गये।

पूरे एक सालकी मालिशें, पीपेके पीपे सरसोंके तेलके उसके पट्ठोंमें रच गये थे! पूरे एक सालकी कसरतें; बैठक और डंड, मुद्गर और "मुरलियाँ," दाव और पेंच! पूरे एक सालकी खुराक; दूध और मलाई, मक्खनके पेडेके पेड़े और घीकी मशकें जो उसके लिए पुंछसे आती थीं! पूरे एक सालकी तैयारियां, पूरे एक सालकी बाट 'गोलड़े शरीफ'के मेलेकी!

और अब पूरे एक सालकी उपेक्षा। हारे हुए पट्ठेकी बेबसी। हारे हुए पट्ठेकी मेहनत।

और ममूदने एकदम सिर हिलाते हुए, अखाड़ेके उस्तादको जा पकड़ा। ममूद नहीं हारा था। लोग ठट्ठा कर रहे थे, उपहास कर रहे थे और ममूद कहता कि वह हारा नहीं था। मुकाबलेकी पार्टी

नाच नाच उठती थीं, उनका ढोल गूँज गूँज पड़ता था, उनकी चादरें और पगड़ियाँ हवामें उड़ उड़ जातीं थीं, उनके सौंटे उछल उछल गिरते थे, और ममूद कहता कि वह हारा नहीं था।

लोगोंने ममूदकी पीठ लगते देखी थी। ममूदके कन्धोंके बीच अभी भी मिट्टी लगी हुई थी। और ममूद कहता कि वह हारा नहीं था।

पर विपक्षी तो ममूदके मुंहसे हार मनवाना चाहते थे। और निर्णय यह हुआ कि दंगल फिर होगा। शर्त केवल एक ही थी कि ममूदका 'खलीफा' अखाड़ेमें हाज़िर हो ताकि अगर फिर भी ममूद हार न माने तो उसके खलीफेको झूठा किया जा सके।

ममूदने यह शर्त मान ली। दंगल अगले दिन होना नियत हो गया।

ममूदने शर्त तो मान ली पर उसे अखाड़ेसे बाहर आकर ख्याल आया कि उसका गाँव तो तीस मील दूर था।

"और ममूद आँखें बंद करके मेलेसे निकल पड़ा। सारा दिन ममूद दौड़ता रहा, दौड़ता रहा। कहीं अगर उसे घोड़ी मिल गई तो उसने घोड़ी पकड़ ली, कहीं उसे बैलगाड़ी मिल गई, तो बैलगाड़ी पर सवार हो गया। और शामको सूरज डूबते ही ममूद अपने गाँव जा पहुँचा।

गाँव पहुँचकर ममूदको ख्याल आया कि उसका खलीफा तो आज कितने दिन हुए शहर गया हुआ था। फिर एकदम ममूदको अपने खलीफेके बेटेका ख्याल आया और वह वैसाका वैसा दौड़ता हुआ जमींदारके घर जा पहुँचा।

खलीफा भी बाहर गया हुआ था, खलीफेकी घरवाली भी बाहर गई हुई थी। घरमें केवल खलीफेका ग्यारह सालका बेटा था, और उसकी बूढ़ी दादी।

दादी कैसे अपने पोतेको ३० मील दूर मेलेमें, नीच जातके साथ भेज सकती थी? और ममूद आंगनमें फूट फूटकर रोने लगा। करमो

बीबीने ममूदको समझाया भी, उस पर नाराज़ भी हुई पर ममूदकी पूरे एक सालकी मेहनत अकारथ जा रही थी, और फिर वर्ष भरका अपमान, ममूद कहता कि वह तो बच्चेको लेकर ही जाएगा।

और करमो बीबी ममूदको लाख लाख गालियाँ देती।

करमो बीबीके पारेसे डरकर और कोई हवेलीकी तरफ़ मुँह न करता।

गांववालोंके लिए बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी। खलीफा घर पर नहीं था। और यदि ममूद हार जाता है तो सारे गाँवका इसमें अपमान था। सबकी पगड़ी उतर जाती। उधर करमो बीबी भी सच्ची थी, ग्यारह सालके बच्चेको ३० मील दूर मेलेमें कैसे भेज देती।

और इसी सोच विचारमें रात हो गई।

एक पहर रात बीत चुकी थी कि घरके नौकरों, और मुहल्ले वालों और पड़ोसियों, और गाँवके बड़े-बूढ़ोंने मिलकर, सोये हुए ज़मींदारके बच्चेको हवेलीसे उठवा लिया और रातोरात घोड़ी पर बिठाकर ममूदके साथ मेले भिजवा दिया। सारी रात घोड़ी दौड़ती रही। और सवेरे ठीक समय पर ममूद अपने खलीफेको कन्धों पर उठाये हुए अखाड़ेमें आ उतरा। लोगोंने ममूदके खलीफेको देखा और तालियाँ बजाना शुरू कर दिया। पर ममूद नाचता हुआ, झूमता हुआ, अपने खलीफे को वैसाका वैसा सिर पर उठाये अखाड़के उस्तादके पास ले गया। उस्तादने] खलीफेके साथ हाथ मिलाया। उसके गलेको फूलोंसे भर दिया गया। और अखाड़ेके एक सिरे पर बैठकर करमो बीबीका पोता दंगलकी प्रतीक्षा करने लगा। ढोल एक सुर, एक ताल, पूरी गमकसे बज रहा था और झुंडके झुंड लोग जमा हो रहे थे। अखाड़के चारों ओर कहीं तिल धरनेकी जगह न थी।

और उधर पीछे गाँवमें करमोबीबीने जब अपने पोतेको पलंग पर न पाया, तो सिर पीट पीटकर बेहाल हो गई। सारा गाँव उसने इकट्ठा

कर लिया। लोग सोचते कि ममूदका बच्चा कच्चा कोल्हूमें पिसवा दिया जाएगा। करमो बीबी तो उसकी बोटी बोटी चिड़ियोंसे चुगवा देगी। ममूदके घर वाले डरसे गाँव छोड़कर भाग गये।

करमो बीबीका क्रोध अपार था। एक बार गलीमें किसीने आँख उठाकर उसीकी ओर देखा था और करमो बीबीने हट्टे कट्टे उस जाटको उसीकी पगड़ीके साथ बाँधकर, उसके मुँहको लेंडी कुत्तोंसे चटवाया था। जवानीमें करमो बीबी अकेली भैंसको पकड़कर उसकी नाकको नथ देती। बिगड़ैल-सी बिगड़ैल घोड़ियाँ करमो बीबीके सामने सिर न उठातीं। और अब चाहे करमोबीबी बूढ़ी हो गई थी, उसके चेहरेकी लाली वैसीकी वैसी थी, उसके माथे पर दबदबा वैसाका वैसा था, उसकी छातीमें हिम्मत रत्ती भर कम नहीं हुई थी।

और फिर करमो बीबीने गोलडे शरीफके मेलेकी ओर घोड़े दुड़वाए ताकि उसके पोतेकी उसे ख़बर लाकर दें, घोड़े दुड़वाए शहरकी ओर ताकि उसके बेटेको गाँवमें हुए इस अनर्थकी सूचना दें।

और फिर करमो बीबीने हंटर उठा लिया। इस्पात जैसी कठोर हथी वाला हंटर जिसकी चाबुक सांपकी तरह फुंकारती थी। और करमो बीबी शेरनीकी तरह बिफरती इन्तज़ार करने लगी।

उधर ममूद लिश-लिश करते अपने पट्ठोंपर हाथ मारता हुआ अखाड़ेमें उतरा, अपने खलीफेके उसने पैर चूमें और शेरकी तरह गरजता हुआ, मुकाबलेके पहलवानपर जा टूटा। पत्थरकी तरह सख़्त ममूदके कमाये हुए शरीरपर जहाँ भी दूसरा हाथ डालता, उसका हाथ छूट-छूट जाता। और फिर ममूदने अपने सिरके साथ उसकी छातीपर घुस मारी और ढेरी चकरीके पहलवानको टाँगोंसे पकड़कर उलटा दिया। आँख झपकनेमें ममूद उसकी छातीपर जा बैठा। ममूद छातीपर बैठा हुआ था पर दूसरेकी पीठ अभी लगी नहीं थी। एक कन्धेपर ममूद ज़ोर डालता

और वह दूसरा उठा लेता, दूसरेपर बोझ डालता तो वह पहला ज़मीन से हटा लेता। अखाड़ेका उस्ताद नीचे पंजे दे देकर खाली जगहको बार-बार देखता। पहलवानोंके दम फूल रहे थे। उनके शरीर लाल हो गये थे। तमाशबीन तालियोंपर तालियाँ पीट रहे थे। दोनों तरफ़ लोग ऐसे तन गये थे जैसे कि हर कोई स्वयं कुश्ती लड़ रहा हो। और फिर ममूदने दाएँ-बाएँ, बाएँ-दाएँ, ढेरी चकरीवालेको अपनी कलाइयोंसे मारना शुरू कर दिया। मारता जाता, मारता जाता। नीचे फँसे हुए पहलवान की चीखें निकल रही थीं। ऐसे लगता जैसे लहू उसके कन्धेसे फूट निकलेगा, उसकी हड्डियाँ जैसे पिसी जा रही थीं, पर फिर भी वह एक कन्धा ज़मीनके साथ लगाता और दूसरा उठा लेता। दूसरे कंधेको नीचे लगाता तो पहला उठा लेता। और जब तक दोनों कन्धे ठीक ज़मीनके साथ न लग जाएँ, पहलवान चित नहीं समझा जाता था। और फिर ममूदने एक नज़र अपने खलीफेकी तरफ़ देखा और जैसे अथाह बल उसमें आ गया हो, वह बिजलीकी तरह कूदा और उलटा होकर अपने घुटनींको उसने ढेरीवालेके कंधोंपर रख दिया और हाथोंसे उसकी टाँगोंको सीधा कर दिया। ढेरी चकरीका पहलवान चित हो गया था। तालियाँ और नारोंकी गूँजसे आकाश फटने लगा। ममूदने अपने खलीफेको सिरपर उठाकर नाचना शुरू कर दिया। ढोल बजते, ममूद नाचता, फूलोंके हार बार-बार लोग ममूदके गलेमें डालते, ममूदके खलीफेके गलेमें डालते। और फिर ममूदके साथियोंने मिलकर गाना शुरू कर दिया, नाचना शुरू कर दिया।

इस तरह गाना हो रहा था, नाच हो रहा था कि ममूदको करमो बीबीका ध्यान आया और वैसे-के-वैसे ममूद और उसके साथी ढोल पीटते, घोड़ियोंपर सवार गाँवकी ओर चल दिये।

घोड़ियाँ दौड़ती, घोड़ियाँ ठहरतीं, पानी पीतीं, चारा खातीं, तीस

मीलका फ़ासला था, आख़िर पहुँचते पहुँचते ही पहुँचतीं। और ऐसे ही दोपहर ढल गई।

शाम हो रही थी जब अपनी हवेलीकी सबसे ऊँची छतपर खड़ी करमो बीबीने देखा, सामने गोलडा शरीफकी सड़कपर कुछ सफ़ेद कपड़े दिखाई दिये। करमो बीबीके हाथमें पकड़ा हुआ हंटर जैसे फुँकारने लगा। उसके दाँत बार-बार उसके होंटोंको आकर काटते और उसपर एक रंग आता और एक रंग जाता। और गाँवके लोग सोचते कि आज न जाने क्या कहर बरसनेवाला था। करमो बीबी चाहे तो ममूदको छतसे उलटा लटकाकर उसके नीचे लाल मिरचोंकी धूनी सुलगा दे, उसे कोई पूछनेवाला नहीं था।

और फिर दूर क्षितिजपर चींटियोंकी तरह दिखाई देते सफ़ेद कपड़े बढ़ने लग गये। सारा गाँव छतोंपर खड़ा इंतजार कर रहा था। सारा गाँव आतंकित था। और फिर सफ़ेद कपड़े और बढ़ गये। घोड़ियाँ दिखाई देने लगीं। ये तो वही थे। ममूद और उसके साथी। ज्यों-ज्यों वे पास आते, लोगोंने थर-थर काँपना शुरू कर दिया। करमो बीबीकी आँखें जैसे क्रोधमें फटने लगीं थीं।

और फिर गोलडे शरीफकी ओरसे आ रहे सवार और पास हो गये। ये तो वही थे। ममूद और उसके साथी। ममूदने करमो बीबीके पोतेको अपने कन्धोंपर उठाया हुआ था। और ढोल पीटा जा रहा था। ये तो जीतकर आये थे। उनके गले फूलोंसे लदे हुए थे। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था। ममूदने अपने खलीफेको सिरके साथ लगाये हुआ था। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीके चेहरेका रंग बदलने लग पड़ा। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीकी बूढ़ी आँखोंको सामने आ रहे लोगोंके गलोंमें फूल दिखाई देने लग पड़े। डम-डमा-डम डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीको बाहर गाँव तक

पहुँच चुके ममूद और साथियोंके नारे सुनाई देने लग पड़े। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीके हाथसे उसका हंटर फिसलकर नीचे आ पड़ा। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और विजेता गाँवमें आ पहुँचे थे। करमो बीबीका चेहरा खिलकर गुलाबकी तरह हो गया। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीकी आँखोंमें ख़ुशीके आँसू छलक आए और वह दौड़ती हुई नीचे गलीमें आ गई। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था और करमो बीबीने ममूदको छातीसे लगा लिया और अपने पोतेको चूमना शुरू कर दिया। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम, ढोल बज रहा था और करमो बीबीने अपने अनाजके कोठे खोल दिये। और जितना किसीसे उठाया जाता, लोग अनाज उठा-उठाकर करमो बीबीकी हवेलीसे ले ले जाते। डम-डमा-डम, डम-डमा-डम ढोल बज रहा था कि बार-बार ममूदकी तरफ देखती करमो बीबी कहती, "बेटा! मैं इस वक्त लड्डू कहाँसे लाऊँ। बेटा! मैं इस वक्त बताशे कहाँ से लाऊँ।"

ढोल, डम-डमा-डम, डम-डमा-डम बज रहा था, बजता जा रहा था।

नीली

नीली रंगकी गोरी थी, जैसे कोई मक्खनके पेड़ेको दूधमें धोकर रखे। सामने मेंहदीके पेड़ तले खड़ी कई बार जब ग्वाला पानीके छींटे मारकर उसका दूध दुहने बैठता तो बरामदेमें खड़े मुझे सहसा शर्म-सी आ जाती। मैं एकदम उसकी ओर पीठ कर लेता। अपने गाँव नदीके आर-पार आने-जाते, कपड़े उतारकर धीरेसे पानीमें छिप रही किसी औरतकी ओर कभी मेरी नज़र जा पड़ती थी और फिर कितनी देर मुझे अपना-आप मैला-मैला लगता रहता था। कुछ इस तरह मुझे महसूस होता नीलीको देखकर।

सुन्दर, स्वस्थ गायका दूध भी बढ़िया होता है। ग्वाले के ढेरसे डंगरोंमें से चुनकर मेरी पत्नीने नीलीको पसन्द किया था। और फिर उसीके दूधका भाव चुकाया गया।

प्रतिदिन सुबह ग्वाला नीलीको हमारे यहाँ ले आता और सामने मेहंदीके पेड़ तले खड़ी वह गागर भरकर चली जाती। प्रतिदिन सुबह पहले नीली आती, फिर ग्वाला आता, सरपर चारेकी टोकरी उठाये। नीलीके सामने चारा रखता, उसके पिंडे पर हाथ फेरता और फिर दूध दुहनेके लिए बैठ जाता। कुछ देर थनोंको अपने खुरदुरे पोरोंसे सहलाता, फिर पानीके छींटे देता, फिर गागरमें धारोंका संगीत सुनाई देने लगता।

जितनी देर ग्वाला दूध दुहता रहता नीली टोकरीमेंसे चने,, बिनौले, खली आदि चारा खाती रहती। दूधका भाव चुकानेसे पहले इस तरहका अच्छा चारा खिलानेकी भी शर्त तय हुई थी। और कभी-कभी मेरी पत्नी चुपकेसे जाकर टोकरी देखती, ग्वाला अपना इक़रार पूरा कर रहा है कि

नहीं। अच्छी ख़ुराक डंगरको मिले तो दूध अच्छा होता है, मक्खन चोखा निकलता है।

प्रतिदिन सुबह नीली आती, जल्दी-जल्दी। कभी मैं सोचता उसे मसालेदार चारा खानेकी जल्दी होती है, कभी मैं सोचता उसे दूध देनेकी जल्दी होती है, दूध देकर सुर्ख़रू हो जानेकी ख़ुशी।

नीली नित आती, कभी जब हम सो रहे होते, कभी जब हम सोकर उठ चुके होते। चुपकेसे आती, पीतलकी गागरमें धारोंका एक नग़मा छेड़कर चली जाती।

कई मास इस तरह बीत गये। फिर एक दिन हमने सुना : नीली आज लात मार गई है। नई हुए भी तो उसे कितने दिन हो चुके थे।

ख़ैर बहुत दिन हमें नीलीकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। अब नीली भी आती, नीलीके पीछे नीलीकी बछिया भी आती—हूबहू नीलीकी शक्ल। गोरा-गोरा रंग, कोमल चमड़ी, लम्बी दुम। शर्मा-शर्मा रही, लाख लाज भरी आँखें।

मेरी पत्नीकी दूधकी आवश्यकता जैसे नीलीके दूध देने पर निर्भर हो गई थी। जितना नीली एक समय दूध देती सबका सब हम ख़रीद लेते। संभवतः किसी और लवेरेका दूध हमारे घर नहीं आता था। और आजकल मेरी पत्नी बार-बार ग्वालेको कहती, "कमबख़्त इस बछियाके लिए भी कुछ छोड़ा कर, बड़ी बढ़िया गाय बनेगी"। परन्तु ग्वाला अपनी ही मर्ज़ी करता। जब मेरी पत्नी उसे बछिया के बारे में याद दिलाती वह नाक में कुछ गुनगुना देता।

क्योंकि बछिया के मुँह मारने पर नीली दूध उतार लाती थी, आजकल ग्वाले ने मसाला भी लाना बन्द कर दिया था। हमारे शिकायत करने पर वह हमेशा कहता कि वह मसाला बाक़ायदा खिला रहा था, केवल वक़्त उसने आजकल बदल दिया था। सांझ को भूसी के साथ ही मिला कर खिला देता था।

आख़िर वही बात हुई। बछिया मर गई।

अगले दिन ग्वाला छोटा सा मुँह लेकर आया। पिछली रात बछिया मर गई थी और नीलीने न कुछ खाया था न पिया था। एक दिन दूधका नागा होगा।

मेरी पत्नी दांत पीसकर रह गई। उसको पता था कि ग्वाला बछिया को जान बूझ कर मार रहा है। पर पहले ही बिचारे का नुकसान हो रहा था। गाय चाहे तो बिलकुल ही लात मार जाय। डंगर का कुछ पता नहीं होता। और हम चुप हो गये। और फिर ग्वाले की आँखों में आँसू तो पहले ही छलक रहे थे।

"चुल्लू भर दूध बचाने के लिए कमबख़्त ने बछिया गंवा ली है," ग्वाला जब पल्टा मेरी पत्नीने अपने होंठोंमें बड़बड़ाया।

अगले दिन सुबह मैंने देखा कोठी के सामने गेट पर बाहर नीली आकर खड़ी हो गई। पीछे ग्वाला आ रहा था। उसके सर पर मसाला की टोकरी थी। अक्सर सुबह जब नीली आती तो सर मार कर गेटको खोल लेती थी। आज चुपकेसे आकर वह गेट पर खड़ी हो गई। अक्सर जब कभी गेट बन्द होता तो वह अपने सींगोंसे गेटको खटखटाने लगती थी। आज उसने इसतरह नहीं किया। वीरान-वीरान पलकों के नीचे उदास-उदास आँखें लिये वह बुझी-बुझी सी आकर खड़ी होगई। जल्दी-जल्दी ग्वाला आया। उसने गेट खोला। उसके पीछे नीली आई। गिन-गिन कर क़दम रख रही थी।

बरामदेमें मैं खड़ा था। मेरे पास मेरी पत्नी खड़ी थी। मेरी पत्नीकी गोदमें हमारी बच्ची थी, ठुमक रही, उछल उछल पड़ रही, किलकारियाँ भर रही, माँकी छातियोंसे उलझ रही।

मेहंदीके पेड़ तले ग्वालाने मसालेकी टोकरी लाकर रक्खी और उसमें हाथ मार कर खलीकी खट्टी-खट्टी खुशबूको बिखेरने लगा।

नीली अभी तक नहीं पहुँची थी। चिन्ता में डूबी हुई, उखड़े-उखड़े क़दम; बेदिले-बेदिले क़दम, वह आ रही थी। मेंहदी तले आकर वह खड़ी हो गई। उसने टोकरीकी ओर देखा तक नहीं। ग्वालाने मसाले में फिर अपनी बांह फेरी और टोकरीको उछाल कर बिनोलोंको दिखाया, चनों को दिखाया। इस बार खलीकी ख़ुशबू बरामदेमें हमारे तक भी आई। नीली आगे बढ़ी। फिर रुक गई, फिर आगे हुई, फिर उसने मुँह मोड़ लिया। कितनी देर जैसे सोचती रही, सोचती रही। सामने टोकरी में पीले पीले चने थे, बिनौले थे, पोले-पोले बालाईके जैसे घूँट हों। और खलीकी ख़ुशबू आ रही थी। इधर खाव उधर हज़म हो जाय। और फिर खली खाव तो भूख कितनी लगी है! किन्तु आज नीलीसे कुछ नहीं खाया जा रहा था। ग्वाला नीली के पिंडे पर हाथ फेरने लगा। मुँह से उसे पुचकारने लगा। कितनी देर इस तरह करता रहा। फिर टोकरी के पास बैठकर उसने फिर उसमें हाथ फेरा। खलीकी ख़ुशबू फिर उठी। नीलीकी जैसे आप ही आप गर्दन उस ओर मुड़ गई। आप ही आप उसका क़दम जैसे आगे हुआ और उसने टोकरी में अपनी थूथनीको डाल दिया। कितनी देर इस तरह उसका मुँह मसाला में रहा। पर नीलीसे कुछ खाया नहीं जा रहा था। आज नीलीसे कुछ नहीं खाया जा रहा था। और फिर नीलीने अपनी थूथनीको उठा लिया। गर्दनको टोकरीकी ओरसे मोड़ लिया। और जैसे पीठ देकर खड़ी हो गई।

परेशान परेशान दृष्टियोंसे ग्वालाने हमारी ओर देखा और बेबस, टोकरीको सरपर उठाये वह लौट गया। उसके पीछे पीछे नीली चली गई।

"चुल्लू भर दूधके लिए कम्बख़्तने अपनी गाय गंवा ली है।" मेरी पत्नीने अपने होंठोंके अन्दर फिर बड़बड़ाया और फिर अन्दर नौकर को कहने चली गई कि डेरी से जाकर दूध ले आये।

हमारी बच्ची अब मेरी छातीके साथ लगी हुई थी। और बरामदेमें टहलता मैं दूर सड़क पर आगे आगे ग्वालेको जाता देख रहा था, और उसके पीछे नीली थी; जैसे कोई अँधेरेमें राह टटोलता चला जा रहा हो।

"और डेरीसे गायका तनिक गोबर भी ले आना, कल संक्रान्ति है, चौकेको लेप करना होगा।" मेरी पत्नी अन्दर नौकरको समझा रही थी।

और मैं अब भी सामने सड़क पर दूर जा रही नीलीकी ओर देख रहा था। जैसे उथले पानीमें खोखली शहतीरी, बिछुड़ी राहों पर बेख़याला अश्रु, कोई पतंग अब गिरी कि अब गिरी। वह आँखोंसे ओझल हो रही थी। तेज़ तेज़ आ जा रहे लोगोंमें गुम होती जा रही थी। कई बार सड़क पर लोग कितने तेज़ चलते हैं!

अगले दिन प्रातःकाल मैंने देखा सामने कोठीका गेट खुला। आगे आगे ग्वाला था, सर पर मसालेकी टोकरी लिये, और उसके पीछे पीछे नीली थी, मुँह उठाये जैसे खलीकी खट्टी-खट्टी ख़ुशबू सूँघ रही हो। मैंने सोचा ग्वालेने मैदान मार लिया है। और वही बात हुई। मेहंदी तले उसने आकर टोकरी रखी ही थी कि नीली आगे बढ़कर टोकरीमें मुँह मारने लगी। कुछ देर उसे इस तरह मसाला खाते देख कर ग्वाला बटलोई लेकर नीलीके नीचे बैठ गया। नीली परे हट गई।

ग्वालेने मुड़ कर उसके मुँहकी ओर देखा। मसाला तो खा रही थी। टोकरीमें मुँह दिये मसाला तो खा रही थी। ग्वाला फिर नीलीकी ओर ज़रा खिसका। नीली और परे हट गई।

ग्वाला हारकर उठ खड़ा हुआ।

नीली मसालेकी टोकरीमें थूथनी दिये हुए होले हौले मसाला खाती जा रही थी। तीन दिनकी भूखी थी।

और ग्वाला उसके पिंडे पर हाथ फेरने लगा। कितनी देर तक लाड से उसकी पीठ पर अपनी उँगलियोंको फेरता रहा। साथ साथ मुँहसे

उसे पुचकारता भी जाता। बार-बार उसे "नील, नील" कह कर पुकारता। कोई पाँच मिनट इस तरह करता रहा।

और फिर ग्वाला आहिस्तासे नीलीके तले बैठ गया। अब नीली मसाला बड़ी तेज़ीसे खा रही थी। वह हिली नहीं। एक नज़र उसके मुँहकी ओर देख कर ग्वालेने नीलीके थनोंकी ओर हाथ बढ़ाया। नीली लात झटक कर परे हो गई।

ग्वाला फिर अपना-सा मुँह लेकर उठ खड़ा हुआ। मसाला तो खाती जा रही थी किन्तु दूधका नाम नहीं लेने देती थी। आगे बढ़कर ग्वाला नीलीके छोटे-छोटे सींगोंको सहलाने लगा। फिर उसकी लम्बी गर्दनको अपने पोरोंसे पलोसने लगा। कितनी देर इस तरह करता रहा। गर्दनसे लाड़ करता ग्वाला पीठ पर पोले-पोले हाथ फेरने लगा। पीठ पर हाथ फेरता वह नीलीकी पूँछसे खेलता रहा। इस तरह प्यार करता फिर वह चुपकेसे नीलीके पास बैठ गया। कितनी देर बैठा रहा। पूँछको मलता रहा। नीलीकी पिछली टाँगोंसे गोबरके सूखे छींटोंको अपने नाखूनोंसे उतारता रहा। और फिर भगवानका नाम लेकर उसने एक थनको धीरे से जा पकड़ा। नीलीने बिदक कर ज़ोरसे लात झटकी, और फुंकारती हुई परे हट गई।

ग्वाला क्रोधमें उठा। एक नज़र उसने नीलीकी ओर देखा। ग्वालाकी आँखोंमें ग़ज़ब भरा हुआ था। एक सांस नीली मसाला खा रही थी जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

आगे बढ़कर ग्वालेने मसालेकी टोकरीको छीन लिया और उसे सर पर रख तेज़-तेज़ क़दम लौट पड़ा। नीली वहींकी वहीं खड़ी गर्दन मोड़े ग्वालेको देखने लगी। वह तो मसालेकी टोकरी उठाये तेज़-तेज़ डग भरता जा रहा था। दूर कोठीके गेटके पास जब वह पहुँचा, नीली रँभाई। जैसे उसे बुला रही हो। ग्वालेने परवाह न की। जब हाथ बढ़ा कर वह गेटको

खोलने लगा नीली फिर रँभाई, जैसे उसे आवाज़ दे रही हो। ग्वाला क्रोधवश गेटसे बाहर निकल गया।

कितनी देर वैसीकी वैसी मेहंदी तले खड़ी, मुँह उठाये नीली गेटकी ओर देखती रही, जैसे ग्वालेकी प्रतीक्षा कर रही हो। बीच-बीचमें कभी-कभी नीली रँभाती, जैसे ग्वालेको आवाज़ दे रही हो। जैसे नीली उसको कह रही हो: मेरे मालिक, तुझे क्यों समझ नहीं आती, अभी तो दो दिन भी नहीं हुए मेरी बच्चीको मरे? मेरी कोखजाई मुझसे छीन ली गई है। मेरे दिलका टुकड़ा! हाय उसकी याद भुलाये नहीं भूलती। इस पेटका क्या करूँ? इसमें तो इंधन डालना ही हुआ। आज तीन दिनसे मैं भूखी हूँ। तुझे क्यों समझ नहीं आती, इन थनोंको मेरी लाडलीके कोमल कोमल होंठ जब लगते थे तो आप ही आप मेरा दूध उतर आता था? कैसे लाडमें वह मेरी खीरी पर सर मारती थी! तुझे नहीं पता मां बच्चेका क्या रिश्ता होता है? मैं नहीं कहती मैं उसको भुलाऊँगी नहीं। मैं उसको भुला दूँगी। मैं नहीं कहती मैं हमेशा दूध नहीं दूँगी। मैं दूध दूँगी। पर कुछ देर और तुम सब्र कर लो। शायद एक दिन ही और। और फिर मैं अपनी जानके टुकड़ेको भूल जाऊँगी। फिर मुझे अपना आसपास ख़ाली ख़ाली नहीं लगेगा। आगे पीछे मुझे यह अँधेरा-अँधेरा नहीं महसूस होगा। और फिर मसाला खाती, अपने ध्यानमें दूध उतार दिया करूँगी। अब दूधका मुझे करना भी क्या है? दूध पीने वाली तो मेरी चली गई। तुम लौट आओ। यूँ मुझे भूखा मत मारो। पहले क्या मुझ पर कम अन्याय हुआ है! तुम लौट आओ मेरे मालिक...

कितनी देर मेहंदी तले वैसीकी वैसी खड़ी नीली कोठीके गेटकी ओर देखती रही, देखती रही। ग्वाला नहीं लौटा।

लिपस्टिक का लाल रंग

कारख़ानेकी पहली सीटी बजती, सुन्दर उठ जाता, सुन्दरकी पत्नी शोभा भी उठ जाती। हर रोज़की आवश्यकताओंसे जल्दी-जल्दी अवकाश पाकर, चूल्हे-चौकेका आधा काम सुन्दर करता, आधा काम शोभा करती। सुन्दर पानी भर लाता। शोभा आग जलाती। सुन्दर दूधके लिए जाता। शोभा फुलके पकाती। इतनेमें दूसरी सीटी बजनी शुरू हो जाती। जल्दी-जल्दी पति पत्नी चाय पीते। एक आध फुलका खाते। फिर शोभा चूल्हे-चौकेको संभालती, सुन्दर अन्दर बिस्तरोंको इकट्ठा करता। और फिर तीसरी सीटी बजनी शुरू हो जाती। तीसरी सीटी हमेशा जैसे पहले ही बज जाती थी। और वह दोनों कारख़ानेकी ओर चल देते। घरको ताला यदि शोभा लगाती तो सुन्दर देख लेता कि ठीक लगा है कि नहीं और यदि सुन्दर लगाता तो शोभा उसे खींच कर तसल्ली कर लेती।

रास्तेमें पति-पत्नी मिलके मालिककी बातें करते, मिलके अफ़सरोंकी बातें करने, मिलके इंजीनियरोंकी बातें करते। दूर नज़दीकके अपने संबंधियोंकी बातें करते। पाकिस्तानमें रह गई अपनी जायदादकी बातें करते। अपने अड़ोसियों पड़ोसियोंकी बातें करते। और इस तरह जब चौथी सीटी बजती तो वह कारख़ानेके गेट पर जा पहुँचते।

हर रोज़ हाज़िरी लगवाना, हर रोज़ टिकट लेना, हर रोज़ तलाशी करवानी, जूतोंको उतार कर हाथोंमें उठाना, हर रोज़ आ जा रहे अफ़सरों को सिर झुका झुका कर, हाथ जोड़ जोड़ कर सत्कार देना और फिर पाँचवीं सीटी तक अपने अपने काममें लग जाना।

सुन्दरका काम कपड़ा बनानेका था। और जब कपड़ा बुन कर मशीन से निकलता शोभा और उसके साथकी स्त्रियाँ कपड़ेमें जो कोई त्रुटि रह गई होती उसको अपने हाथसे ठीक कर देतीं। कहीं कोई तागा उलझा हुआ होता उसे खींच देतीं, कहीं कोई बूटी बेतरतीबी होती उसको सुलझा देतीं।

जब आधी छुट्टीकी सीटी बजती, पति-पत्नी कारखानेमें एक ओर शहतूतके नीचे बैठ कर भोजन करते। घीके फुलकोंके साथ आलूकी सूखी भाजी या बैंगनका भुर्ता। प्याज़की गाँठको हमेशा सुन्दर मुक्का मार कर तोड़ता और फिर दोनो आधा आधा बांट लेते। रोटी खाकर नलके पर जब तक पानी पीनेकी इनकी बारी आती सीटी फिर बज जाती और दौड़ते हुए वह अपने अपने काममें लग जाते।

शामको जब पूरी सीटी बजती, सुन्दर हर रोज़ थक टूट जाता। "इस कुत्ते काममें एक तो सारा वक़्त खड़ा रहना पड़ता है और दूसरे यह काम ध्यान बहुत माँगता है। आँखें बस मशीनमें ही गड़ी रहतीं हैं।" हर रोज़ सुन्दर शिकायत करता और उसकी पत्नी सुई चला-चलाकर छलनी हुए अपने पोरोंको दिखाती। फिर दोनों कहते, "पैसा कमाना कौन-सा आसान है!" और अपने-अपने मनको दिलासा दे लेते।

घर लौटकर शोभा फिर खाने-पकानेके काममें व्यस्त हो जाती। सुन्दर उसे सब्जी ला देता, लालटेनको साफ़ करता, आँगनमें लगे तुलसीके पेड़को पानी देता। और इस तरह रात हो जाती। सोनेका समय हो जाता।

सुन्दर और शोभा बहुत ख़ुश थे। दोनों काम करते, दोनों कमाते, दोनों मिलकर खाते और जिस तरह पिछले कई माससे हर तनख़्वाहपर वह पैसे बचा रहे थे, सुन्दर सोचता, वह तो चाहे दो चार वर्षोंमें फिर अपना घर बना लेगा।

अब तो सुन्दरको पाकिस्तानमें रह गई अपनी जायदाद भी भूल गई थी। और फिर उसके ख़्यालसे उसे अपना गाँव याद आ जाता था, अपनी ब्रादरी याद आ जाती थी, अपने अड़ोसी-पड़ोसी याद आ जाते थे और पीछे अपने गाँवमें यों अपनी पत्नीसे वह कारख़ानेमें काम करानेका कभी सोच भी नहीं सकता था। वहाँ तो लोग इतनी-इतनी बातें करते। वहाँ तो शोभा कभी मुँह सर लपेटे विना बाहर नहीं निकली थी। जैसे उसकी मां करती थी, जैसे उसकी माँकी माँ करती थी।

और यहाँ पत्नी भी कमाती थी, पति भी कमाता था और सुन्दर हैरान होता अपने साथियोंकी घरवालियोंपर, सारा-सारा दिन बेकार बैठी मक्खियाँ मारती रहती थीं। उधर पहलीको तनख़्वाह आती, इधर ख़त्म हो जाती और फिर उधार चलना शुरू हो जाता।

सुन्दर और उसकी पत्नी कौड़ी-कौड़ीका हिसाब रखते। हर पहली को वह अपनी पूरी तनख़्वाह अपनी पत्नीका मुट्ठीमें ला डालता और शोभा दो तनख़्वाहोंको मिलाकर घरका ख़र्च अलाहिदा रख लेती और शेष रक़म डाकख़ानामें जमा करा देती। डाकख़ाना उनके कारख़ानेके अन्दर ही तो था। और शोभाको हमेशा पता होता कितने पैसे उन्होंने जमा करवाये थे, कितने पैसे सूदके उस रक़ममें मिल गये।

जो बात सुन्दरको बहुत अजीब लगती वह उसके साथियोंका समय कुसमय कारख़ानेकी कैंटीनमेंसे लड्डू ख़रीदकर खाना था, जलेबियों और पेड़ोंपर टूट-टूट पड़ना था। सुन्दर सोचता इतनी कम आमदनीपर वह लोग कैसे यह ऐयाशी कर सकते हैं।

और फिर कई तो शाम को शहर भी जाते थे। दूर छः मील दूर शहर। कोई साइकिलोंपर जाते थे, कोई बस में बैठ कर जाते थे। और शहर की दुनिया और की और होती है। शहरमें कितनी भीड़ होती

है। शहरमें कितना शोर होता है। शहरियोंके गाने जैसे जादू कर देते हैं। आँखों के सामने औरके और सपने नाचने लगते हैं।

यों सोचता-सोचता सुन्दर जैसे काँप जाता। उसे अपनी पत्नी और अच्छी-अच्छी लगने लगती।

सुन्दर अपनी स्त्री को करघे वाली बैरकमें होने वाली सब बातें बताता। शोभा अपने पतिको बाहर बरामदेमें हुई हर बातकी रिपोर्ट देती। कितनी-कितनी देर वह डोरिए, चारखाने, चिकन, दुसूती की बातें करते रहते। जो कुछ उन दिनों कारख़ानेमें बुन रहा होता उसका चर्चा यों होता जैसे कोई पुराना जान-पहचानका मिल गया हो।

जब कपड़ा बुन कर बाहर बरामदेमें आता तो शोभा और उसके साथ काम करने वाली स्त्रियाँ हमेशा कपड़ेको देख कर बता देतीं कि कपड़ा किस करघेमें बुना है, किस कारीगरकी देख-रेखमें बुना है। और शोभाको हमेशा इस बातका गर्व होता कि सुन्दरका काम सबसे बढ़िया गिना जाता था। उसके साथ काम करनेवाली सबकी-सब औरतें कितनी कितनी देर सुन्दरके बनाये कपड़ेको हाथोंमें लेकर देखती रहती थीं। उंगलियोंसे छू-छू कर देखती रहती थीं। सुन्दरके करघेमेंसे निकले थानों पर सफ़ाई करनेवालियोंको कमसे कम काम करना पड़ता था। और उसके बनाये कपड़ेके लिए हर एककी आखें लगी रहतीं। जिसके पास सुन्दरका बनाया थान होता वह सबसे अधिक बातें करती। यों ही अफ़सरोंको दिखानेके लिए एक तरफ़से सुई डालती रहती दूसरी तरफ़से निकालती रहती।

शोभा बहुत ख़ुश थी। सुन्दर बहुत ख़ुश था। एक ज्योति दो मूर्ति। गृहस्थीकी गाड़ीके दोनों पहिये एक ताल एक स्वर चल रहे थे।

इस तरह ख़ुशी-ख़ुशी उनके दिन गुज़र रहे थे कि एक दित कारख़ाने के दफ़्तरमें कार्यसे गये सुन्दरने देखा सामने उनके गाँवका एक

बाबू बैठा काम कर रहा था। सुजानको इस कारख़ानेमें आये कुछ ही दिन हुए थे। सुन्दरके लिए जैसे चाँद चढ़ आया। कितनी देर वह अपने ग्रामनिवासीके साथ बैठा इधर-उधर की बातें करता रहा। और फिर सुन्दर सुजानके घर गया। फिर सुजान सुन्दरके घर आया। फिर सुजानकी पत्नी सुन्दरकी पत्नीको मिली। फिर उन्होंने बैठकर अपना दूर पारका कोई रिश्ता-सम्बन्ध निकाल लिया।

एक दूसरेको उन्होंने दावतें देना शुरू कर दिया। औरतें बहन-बहन करके एक दूसरेको पुकारतीं। मर्द भाई-भाई बन गये। क्योंकि सुजान लिखने-पढ़नेका काम करता था वह बड़ा भाई बन गया। सुन्दर हाथका काम करता था, वह छोटा भाई रह गया। क्योंकि सुजान की पत्नी बाबुवानी थी, बालोंमें फूल चिड़ियाँ बनाती थी, कपड़ोंको इस्त्री करके पहनती थी, इसलिए वह बड़ी बहन हो गई और सुन्दरकी पत्नी सादा खाने वाली, सादा पहनने वाली, सादा बातें करने वाली छोटी बहन बन कर ही ख़ुश थी।

हर छुट्टी वाले दिन वह इकट्ठे होते, इकट्ठे बाहर जाते, इकट्ठे उठते बैठते। औरतें घंटों अकेली बैठी खुसुर फुसुर करती रहतीं। मर्द अपने गाँवकी बातें करते; देशके बटवारेके समय कौन कैसे निकला, किसका किसका क्या नुक़सान हुआ, अब कौन कहाँ बसा हुआ है। और उनकी बातें ख़त्म होने में ही न आतीं।

सुन्दर बहुत ख़ुश था! सुन्दरकी पत्नी शोभा बहुत ख़ुश थी।

एक दिन सुजानकी पत्नीकी तबीयत ठीक नहीं थी। शामको सुन्दर और शोभा उसे देखनेके लिए गये। इनके बैठे-बैठे उसकी तबीयत ज्यादा ख़राब हो गई। उस रात शोभा अपनी बहनके पास ही ठहर गई। अगले दिन भी सुजानकी पत्नीकी तबीयत ठीक नहीं थी। शोभाने इसलिए कारख़ाने जाना मुनासिब न समझा। सुजान बाबू था, उसने झट अर्ज़ी लिख दी।

बाबुवानीको मामूली सा पेटमें दर्द था। उधर मर्द काम पर गये इधर वह भली चङ्गी हो गई। और फिर सारा दिन नई बनी बहनें बातें करती रहीं, हँसती रहीं। शोभाने बाबुवानीके बालोंको कंघी की। बाबूवानीने शोभाको जूड़ा बनानेका ढंग सिखाया। शोभाके तो इतने घने बाल थे, उसका जूड़ा हाथोंमें न समाता।

शामको जब शोभा अपने घर आई, सुन्दरको उसमेंसे एक भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। और सुन्दर कितनी देर उसके बालोंको देखता रहा। उसके जूड़ेकी फबनपर उचक-उचककर उसकी नज़र जा पड़ती। चौकेमें काम कर रही शोभाकी चुनरी आज उसके सरसे बार-बार फिसल फिसल जाती।

उस दिन जो भोजन शोभाने पकाकर सुन्दरके सामने रखा सुन्दरको वह बड़ा स्वादिष्ट लगा। एक सब्जी, एक दाल, साथ मीठा।

हर रोज़ तो कामसे लौटी शोभाके पास मुश्किलसे एक दाल या एक सब्ज़ीके लिए समय होता था, साहस होता था। और फिर उस दिन शोभा नहीं तो हर रोज़ की तरह सुन्दरको थकी-थकी लगी। जैसे बाबु-आनी हो। साफ़-साफ़, मुसकानें बिखेर रही।

और देर तक उस रात पति-पत्नी बातें करते रहे। शोभाके बालोंमेंसे आ रही सुगन्ध सुन्दरकी सारी थकानको जैसे उतार रही थी। और सारा दिन घर रही शोभाको जैसे नींद ही नहीं आती थी।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि एक सुबह शोभाकी अपनी तबीयत कुछ ढीली सी थी। शोभाने भी सोचा, सुन्दरने भी यही राय दी, उस दिन वह आराम कर ले। और शोभा काम पर न गई। बादमें बाबुआनी उनके घर आई। और सारा दिन दोनों मिलकर चोचलें करती रहीं।

शोभाकी बाबुआनीके साथ घनी मित्रता हो रही थी।

बाबुआनी शोभाको साफ़-साफ़, सुथरी-सुथरी, सुन्दर-सुन्दर लगती। उसके हर काममें जैसे सुघड़ापा हो। बाबुआनी कभी ग़रीबीका ज़िक्र न करती, कभी मैलका ज़िक्र न करती। बाबुआनी कभी न कहती उसको भूख लगी है, कभी न कहती उसको प्यास लगी है। बाबुआनी अपने नाखूनोंको साफ करके उनको रङ्ग लगाती। पाउडर मलकर अपने गालों को गोरा कर लेती। बाल बाबुआनीके चाहे छोटे थे, उनमें चुटीला छिपा कर वह अपने जूड़ेको शोभासे भी बड़ा कर लेती। और शोभा उसे देख देखकर आश्चर्यचकित होती रहती।

शोभाको बाबुआनीमें कई बातें अपनी चची जैसी लगतीं जो शहरमें से उनके घर ब्याही आई थी। शोभाको बाबुआनीमें कई बातें अपनी माँ जैसी लगतीं जो सारी आयु शहरमें जाकर रहनेके लिए तड़पती रही और आखिर शहरके अस्पतालमें जाकर मरी थी।

एक दिन कारख़ानेसे लौटते शोभाने अपने साथ आ रहे पतिसे पूछा : "सुजान भाई साहब की तनख़्वाह क्या होगी ?"

बाबूकी तनख़्वाह सुन्दरसे भी कम थी।

तो फिर शोभा कुछ कहना चाहती थी, किन्तु बात जैसे उसके होठोंपर आकर रुक गई।

कई दिन गुज़र गये।

पिछले दिनोंमें शोभा कारख़ानेसे कई बार छुट्टी ले चुकी थी, कभी कोई बात हो जाती, कभी कोई बात हो जाती। शोभाके साथ काम करनेवाली औरतोंको अब वह अजीब-अजीब लगती थी। उसके सामने जैसे वह खुलकर हँस न सकती हों, खुल कर बात न कर सकती हों। अफ़सरोंको शोभाका हर चौथे दिन छुट्टी लेना अच्छा नहीं लगता था। और न उसके साथ काम करनेवाली औरतोंमें, और न उनके ऊपर काम करनेवाले मिस्त्रियोंमें शोभाके लिए अब पहले जैसा आदर रह गया था। और शोभाका मन उखड़ा-उखड़ा रहता।

और शोभा मन ही मनमें सोचती यदि बाबुआनी काम नहीं करती थी तो वह कौन-से भूखे मरते थे ! बल्कि इनसे अच्छा खाते थे, अच्छा पहनतेथे। अगर औरत घरमें रहे तो लाख बचत कर सकती है । शोभा को इस्त्री किये हुए कपड़े बड़े अच्छे लगते थे । और उनपर ख़र्च भी कौन-सा होता है । चार रुपयेकी इस्त्री लो, दो कोयले डालो, जब ज़रूरत हो बरत लो । परन्तु इस्त्री किये हुए कपड़े पहनकर कोई कार-खानेमें काम थोड़ा ही करता है । पहले ही शोभाके जूड़ेको सारी औरतें आँखें फाड़-फाड़ कर देखती रहती थीं । जो अफ़सर गुज़रता, जो इंजी-नियर गुज़रता एक नज़र उसकी उचक कर शोभाके जूड़ेपर ज़रूर पड़ जाती । और शोभाको कभी यह अच्छा लगता कभी बहुत बुरा लगता ।

और कभी-कभी शोभा आँखें बन्द करके सोचती कि यदि वह घर रहे तो फिर जितनी देर उसका जी चाहे वह नहाती रहेगी, जितनी देर उसका जी चाहे बालोंको कंघी करती रहेगी । कपड़े पहनेगी, उतारेगी, फिर पहनेगी । और फिर वह होठोंको सुखा सकेगी, और फिर वह आँखों को कजला सकेगी, और फिर वह नाखूनोंपर पालिश लगायेगी । कभी बालोंको यों बनायेगी, कभी बालोंको यों बनायेगी । और फिर एक बाबुआनी क्या, कालोनीमें औरतें खड़ी हो-हो कर उसे देखा करेंगी । और इस तरह सोचते-सोचते कितनी-कितनी देर शोभा एक नशामें उन्मत्त पड़ी रहती । फिर एक रोज़ पता नहीं दिनमें क्या बात हुई रात अपने पतिके पास बैठी शोभाने उससे कहा वह अगले दिनसे काम पर नहीं जायगी ।

और सुन्दरने अपनी आजकल नई-नई हो रही, अच्छी-अच्छी लग रही पत्नीकी हाँमें हाँ मिला दी ।

और शोभा घर रहने लगी । जो कुछ बाबुआनी करती थी, शोभा भी वहाँ कुछ करने लगी । कभी-कभी वह सोचती : काश यदि सुन्दर पढ़ा-लिखा होता तो उसको भी लोग बाबुआनी कहकर पुकारते !

तनख़्वाह चाहे बाबूकी दस रुपये कम थी पर पैसाका क्या है, पैसा तो हाथोंका मैल होता है।

उस मास शोभाके घर एक ही तनख़्वाह आई, पर शोभा खुश थी।

कारख़ानेमें आजकल सुन्दर अपने साथियोंके साथ मिलकर बैठता, गप मारता, खाता-पीता। आधी छुट्टीके वक़्त आजकल वह कभी कोई चसका लगाते, कभी कोई ऐयाशी करते। अपने साथियोंकी तरह सुन्दरने भी कैंटीनसे जलेबियाँ खानी शुरू कर दीं। लड्डुओं और पेड़ोंपर उसकी नज़र रहती। घरके खानेसे जैसे उसकी नियत नहीं भरती थी। और अगले महीने जो तनख़्वाह सुन्दर घर लेकर गया उसमें सात रुपये कैंटीनकी काटके कम थे।

शोभाने इसका कोई ख़्याल न किया। मर्द होते ही ऐसे हैं। मर्द जब मर्दों में मिलकर बैठते हैं तो ख़र्च हो ही जाता है।

उससे अगले महीने जो तनख़्वाह शोभाका पति घर लाया उसमें दस रुपये कम थे। पिछली बार उसने कैंटीनकी रसीद अपनी पत्नीको लाकर दी। इस बार सुन्दरने उसकी आवश्यकता न समझी।

पर शोभाको इसकी कुछ समझ न आई। वह तो ख़ुश थी अपनी नई मिली आज़ादी में। सारा-सारा दिन बेकार, जो उसका जी चाहता करती। कितनी ही तो उसने सहेलियाँ बना ली थीं। बाज़ारमें कभी कुछ ख़रीदने जाती, कभी कुछ खरीदने जाती। सुबह कितनी-कितनी देर मन्दिरमें बैठी रहती। शोभा अब पूजा कर सकती थी। शोभा अब दोस्तियाँ पाल सकती थी। शोभा अब अपने शरीरका ख़्याल रख सकती थी। शोभा अब बड़ी ख़ुश थी।

कारखानेके बाद यदि सुन्दर सीधा घर न आता तो अपने नये रंग-ढंगमें मस्त शोभाको पता भी न लगता। घर आकर यदि वह शामको फिर अपने साथियोंके साथ बाहर निकल जाता तो अपनी इस नई आज़ादीके नशेमें शोभा परवाह भी न करती।

शोभाका ख़ाविन्द कमाता था, शोभा ख़र्च करती थी, खाती थी, पीती थी। शोभा ख़ुश थी, बहुत ख़ुश थी।

इस तरह एक महीना और गुज़र गया। अगली तनख़्वाहसे कोई एक दिन पहले आधी छुट्टीके समय मिलकर बैठे सुन्दरके साथियोंने पहली तारीख़ मनानेकी एक योजना बनाई। सुन्दर सुनता रहा। ऐसा कुछ तो उसके साथी कई बार पहले कर चुके थे। सुन्दर सिर हिलाता उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहा। यदि दस-दस रुपये सब मिलाएँ तो पचास रुपये बन जाते थे, और पचास रुपये कोई कम नहीं होते।

"पर शोभा!" दोपहरके बाद जितनी देर वह काम करता रहा, सुन्दरके दिलमें बार-बार यही ख़्याल आता।

शामको घर लौटते समय उसने अपने एक साथीसे पूछा और उसका वह साथी हँसने लगा; हँसता जाय और हँसता जाय।

सुन्दर इसी उधेड़-बुनमें था कि अगले दिन अपनी-अपनी तनख़्वाहें जेबोंमें डाले शामको घरकी बजाय सुन्दर और सुन्दरके साथी शहर निकल गये।

दूर छः मील दूर शहर! जहाँ की दुनिया सुन्दरको पता था और की और होती है। जहाँ कितनी भीड़ होती है! कितना शोर होता है! जहाँ के गाने जादू कर देते हैं। आँखोंके सामने औरके और सपने नाचने लगते हैं।

सुन्दर इस तरह विचारोंमें खोया हुआ था कि बस दौड़ती हुई उसे दूर बहुत दूर ले जा रही थी।

चम्बेलीपर चिड़िया

बूढ़ा गंगासिंह उदास उदास था।

पहली बार जीवनमें उसको महसूस हो रहा था कि उसकी हार हो रही है। पहली बार जीवनमें उसने कोई चीज़ माँगी थी और ईश्वरने जैसे उसे इनकार कर दिया हो। पहली बार जीवनमें उसने कहीं हाथ डाला था और उसकी मुट्ठी ख़ाली की ख़ाली लौट आई थी।

साँझको जब वह घर लौटा, बूढ़े गंगासिंहसे आँगनमें खड़ा न हुआ गया। और वह बाहर निकल गया।

अकेला खेतोंमें घूमता, क्यारी-क्यारी फिरता, बूढ़ा गंगासिंह सोचता अब वह बाज़ारमें खड़े होकर झूठ सचका निर्णय नहीं किया करेगा; झूठेको झूठा नहीं कहा करेगा, सच्चेको सच्चा नहीं जतलाया करेगा। इस वर्ष मेलेमें अपने बैल नुमायशके लिए नहीं भेजेगा। "बैल जीते क्या और हारे क्या। वह सोचता। और फिर वह एक पत्थरपर अपनी लट्ठेकी दूध-सी सफ़ेद चादरके समेत बैठ गया। उसने पहले इस तरह कभी नहीं किया था। बूढ़े गंगासिंहको ख़्याल आया, मक्खन हलवाईने अभी तक उसकी रक़म नहीं लौटाई थी। तीन बीसी तो सूद हो जाता, यदि इसने काग़ज़ लिखवाया होता। और वह सोचता अब वह लिहाज़ नहीं करेगा। अपनी रक़म खरी कर लेगा। गाँवकी हर बाल विधवाका बूढ़े गंगासिंहने स्वयं बीचमें बैठकर विवाह करवाया था। बस दो बाक़ी रह गई थीं। "हों ससुरी, मैंने कोई ठेका थोड़ा ही लिया है!" उनका ख़्याल आते ही उसके मुँहसे निकल गया। और फिर बूढ़े गंगासिंहको लगा जैसे वह मैला-मैला हो, मिट्टी धूलसे जैसे उसका अंग-अंग लिपटा हुआ हो। उसको अपने आपमेंसे बू आने लगी। मैल और पसीनाकी दुर्गन्ध।

बूढ़ा गंगासिंह रहटपर नहानेके लिए चल दिया। चलते-चलते रास्तेमें एक पत्थरकी उसकी ठोकर लगी। बूढ़े गंगासिंहने पत्थरकी ओर एक नजर देखा और आगे निकल गया। आज पहली बार उसने पथ पर पड़े पत्थरको उठाकर किनारे नहीं किया था—वह तो ठीकरोंको रोड़ोंको रास्तेसे चुन-चुनकर संभालता रहता था, कहीं अंधेरे सवेरे किसीको ठोकर न लग जाय। पंचायती कुएँ की माला टूटने वाली थी। जब भी बूढ़ा गंगा सिंह कुएँ पर आता उसको हमेशा गाँठता रहता। किन्तु आज उसने ढलक रही मटकियों, ढीली हो रही मालाकी ओर आँख उठाकर न देखा। गाँवकी औरतें खड़ीकी खड़ी रहीं और वह अपनी चादर उतारकर नहाने बैठ गया। पहले उसने यों कभी नहीं किया था। न नहाते समय, न नहाकर कपड़े पहनते हुए, न कपड़े पहनकर घर की ओर चलते बूढ़े गंगा सिंहकी ज़बान पर आज भगवान्‌का नाम आया।

अंधेरा हो रहा था जब बूढ़ा गंगासिंह घर पहुँचा। उसको आँगनमें जल रही लालटेनकी रोशनी मध्यम मध्यम प्रतीत हुई। चूल्हेमें आग जैसे धुआँ छोड़ रही हो। और बूढ़े गंगासिंहको चूल्हेमें धुआँ ज़हर लगता था। उसको लगा जैसे सामने बरामदेमें पड़ी खटिया फिर टेढ़ी रक्खी है। और इस तरह टेढ़ी पड़ी चारपाईको देखकर उसका जी उलझ पड़ता था। बूढ़े गंगासिंहका दिल चाहा अपने मुँहकी सारी बदमज़गी अपनी पत्नी पर उगल दे। पर फिर एकदम उसने अपने आप पर ज़ब्त कर लिया।

"नहीं, नहीं, नहीं" बूढ़ा गंगासिंह सर हिलाने लगा। निहालकी माँ बेचारीका कोई क़ुसूर नहीं था। यों पहले भी कई बार हुआ था। ख़फ़ा वह किसी पर होता था, और क्रोध अपनी घरवाली पर आ निकालता था। आज नहीं वह यों होने देगा। और बूढ़ा गंगासिंह दालानमें अपनी छड़ी ढूँढ़ने लगा।

छुड़ी थी कि मिल ही नहीं रही थी। एक स्थान पर जहाँ वह कोई चीज़ रखता था वहाँ क्यों नहीं वह चीज़ रहती थी? आखिर घरमें एक बूढ़ा गंगासिंह था एक उसकी पत्नी थी। यह चीज़ोंको कौन आगे-पीछे कर देता था? 'इस कुत्ते घरमें कोई चीज़ अपनी जगह पर कभी नहीं हुई।' उसको क्रोध आ रहा था। बूढ़ा गंगासिंह फिर संभल गया।

चौकेमें भोजन करनेके लिए बैठा बूढ़ा गंगासिंह सोचता वह क्यों वहाँ आ बैठा था। उसको तो कोई भूख नहीं थी। दालमें आज फिर नमक कम था। निहालकी मां इतना मक्खन क्यों रख देती थी रोटीमें? उसने कई बार कहा था मक्खन निहालके लिए जमा करना चाहिए। मक्खनका घी बनाकर लड़केको भिजवाना चाहिए। शहरोंमें आजकल अच्छा घी नहीं मिलता। मक्खन था कि संभाले नहीं संभल रहा था। वह-वह कर थालीमें जा रहा था। नवाला तोड़ते हुए उसकी उंगलियाँ मक्खनमें जैसे डूब गई थीं। आखिर क्यों इतना मक्खन डालती थी निहालकी मां? बेसमझ औरत! अनपढ़! एक बार उसे कहेका असर ही नहीं होता था। बुढ़ियाका दिमाग़ ख़राब हो गया है। 'नहीं, नहीं, नहीं' बूढ़ा गंगासिंह सर हिलाने लगा। उसको फिर क्रोध आ रहा था। पानी हमेशा ढलान की ओर बहता है। निहालकी मां बेचारी पर गुस्सा क्यों? 'नहीं, नहीं, नहीं।'

छत पर सोनेके लिए गया बूढ़ा गंगासिंह बार-बार कानोंमें उंगलियाँ देता। उसको नम्बरदारके घर ढोलकपर गाये जा रहे गीतकी आवाज़ आ रही थी। 'साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे, बाबल असी उड जाणा'[1] नम्बरदारके आँगनमें जल रही बत्तियोंकी रोशनी जैसे अँधेरेको चीरती हुई बूढ़े गंगासिंहके कोठे तक पहुँच रही थी। कितना शोर था! अभी तो बरात नहीं आई थी। कल जब बरात आयेगी तब तो यह शायद

---

१. चम्बेलीपर चिड़िया, मैं तो उड़ जाऊँगी—पंजाब लोक गीत।

आकाशको ही सरपर उठा लेंगे। कोई हँस रहे थे, कोई खेल रहे थे, कोई आ रहे थे, कोई जा रहे थे। इस चीख़ चहाड़ेमेंसे बार-बार ढोलककी आवाज़ उभरती थी, बार-बार गीतके बोल सुनाई देते थे, "साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे बावल असी उड जाणां।"

"उड़ जायगी, कल वह उड़ जायगी!" बार-बार बूढ़े गंगासिंहके होठोंपर यह बोल आते, बार-बार उनको वह निगल जाता।

आज कई दिन हुए उसने सुना था नम्बरदारने अपनी बेटीकी मँगनी कहीं कर दी थी। बूढ़े गंगासिंहको विश्वास नहीं हुआ था।

फिर नम्बरदारकी हवेलीकी लिपाई हुई, उसके घर कलई हुई। गंगासिंहको तब भी यक़ीन नहीं हुआ कि नम्बरदार अपनी बेटीका व्याह कर रहा है। और फिर नम्बरदारके घरके सामने रसदकी भरी हुई बैलगाड़ियाँ आ खड़ी हुईं। और फिर नम्बरदारके घरकी लड़कियाँ गली-गली फिरकर "सद्दा" देने लगीं। फिर ढोलक मँगवाई गई। ढेरों महमान नम्बरदारके आने लगे। बूढ़े गंगासिंहने उस गलीमेंसे गुज़रना छोड़ दिया। इतना सारा चक्कर काटकर खेतोंमें होता हुआ घर आता, परन्तु नम्बरदारकी हलेलीके सामनेसे उससे गुज़रा न जाता।

पर इस ढोलकका कोई क्या करे? इसकी आवाज़ तो सारे गाँवमें गूँज रही थी। ढोलककी आवाज़ और गीतके बोल, 'साडा चिड़ियाँ दा चंबा वे बावल असी उड जाणां।'

नम्बरदार की बेटी उड़ जायगी। शामको बारात आयगी और सुबह फेरे हो जायेंगे। बूढ़े गंगासिंहने सुना था लड़केवाले भी नम्बरदार थे। दूल्हेका बाप नम्बरदार था। दूल्हेके बापका बाप नम्बरदार था। दूल्हेके बापके बापका बाप भी नम्बरदार था। और अपने समय पर यह लड़का भी नम्बरदार बनेगा। नम्बरदारी उनके घर की मिल्कियत थी। बूढ़ा गंगासिंह सोचता वह नम्बरदार थोड़ा ही था। न उसका बेटा कभी

नम्बरदार होगा। वह तो बस अपने हाथोंकी कमाई करता था। साफ़-सुथरा जीवन गुज़ारता। जहाँ तक संभव हो लोगोंकी सेवा करता। सच्चेको सच्चा कहता, झूठेको झूठा कहता। किसीसे न डरता था न किसीको डराता था। और बूढ़े गंगासिंहका एक ही एक बेटा शहरमें सोलहवीं जमात पढ़ता था। सारेके सारे गाँवमें इतना और कोई नहीं पढ़ा था। अगले साल निहाल पास हो जायगा। पूरी सोलह जमातें वह पास कर लेगा।

अपने बेटे निहालमें जैसे बूढ़े गंगा सिंह की जान हो। किस तरह उसने उसे पाला था। उसकी ख़ातिरें कर करके, उसे लाड कर करके। उस घरमें वही होता जो निहाल चाहता था। माता-पिता का एक ही एक बेटा, आठों पहर उस आँगन में निहाल निहाल होता रहता। अब निहाल सो रहा है। अब निहाल सो के उठ गया है। अब निहाल नदी पर नहाने गया है। निहाल ने देर क्यों कर दी है? निहाल पीपलके नीचे अपने मित्रोंके साथ बातें कर रहा है। निहाल पढ़ रहा है। अब निहाल लिख रहा है। निहाल भोजन कर रहा है। निहालको करेले पसन्द हैं, कचालू पसन्द हैं, कद्दू पसन्द नहीं। निहालको खट्टा साग पसन्द था। और गली मुहल्लेमें जिसके घर भी खट्टा साग पकता, निहालके लिये अवश्य एक कटोरा भेज दिया जाता।

निहालको अच्छेसे अच्छे स्कूल में भेजा गया। जब वह स्कूल पास कर चुका तो जिस कालेजमें उसने कहा उसी कालेजमें वह दाख़िल हुआ। उसकी चिट्ठी बादमें आती थी और बूढ़ा गंगासिंह पैसे उसे पहले भेज देता था।

और निहाल जवान भी कैसा निकला था! उसे देख-देखकर भूख न मिटती। तेज़ बोल उसके मुँहमें से कभी किसीने सुना न था। और बूढ़ा गंगासिंह सोचता लड़कोंको कुछ-कुछ चंचल होना ही चाहिए। वह लड़का ही क्या जिसने कभी जवाब न दिया हो। वह लड़का ही क्या

जिसने कभी माता-पिताका कहना न टाला हो। वह लड़का ही क्या जिसकी कभी शिकायत न आई हो; गली मुहल्लेमें जिसकी कभी लड़ाई न हुई हो। परन्तु निहाल तो जैसे देवता था। खेलनेमें सबसे आगे, पढ़नेमें सबसे ऊपर, मेल-मिलापमें हर मन प्यारा।

'साडा चिड़याँ दा चंबा दे वावल असी उड जाणां' गीतके बोल अब भी सुनाई दे रहे थे। गीतके बोल और ढोलककी आवाज़। बूढ़े गंगासिंहको नींद नहीं आ रही थी। रात कितनी बीत चुकी थी! अभी तक वह लोग गीत गा रहे थे। और बूढ़ा गंगासिंह बार-बार करवट लेता। उसके अन्दर जैसे कोई ज्वाला सुलग रही थी।

रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी कि बूढ़े गंगासिंहने महसूस किया सामने खटिया पर लेटी निहालकी माँ भी करवटें ले रही है। 'इसे क्या हो गया? यह अभी तक क्यों नहीं सोई?'

और बूढ़ा गंगासिंह चुपचाप देखने लगा। निहालकी माँ जैसे भट्टीमें पड़ा कोई दाना भुन रहा हो, मछलीकी तरह तड़प रही थी। बार-बार सर हिलाती, बार-बार हथेलियोंको मलती, कभी उठकर बैठ जाती, कभी छतपर टहलने लगती।

'इसको हो क्या गया है?' बूढ़ा गंगासिंह अपने आपसे कहने लगा।

और अभी वह फ़ैसला नहीं कर पाया था कि वह क्या करे कि उसकी पत्नी धीरेसे बूढ़े गंगासिंहकी चारपाईके पास आई।

'मैंने कहा आप सो गये हैं?'

'क्यों क्या है निहालकी माँ?' बूढ़े गंगासिंहको नींद कहाँ, वह उठ कर बैठ गया।

'मैं कहती हूँ आप शहर चले जायें?'

'वह क्यों?'

'मैं कहती हूँ आप शहर निहालके पास चले जाओ, अब चलोगे तो कहीं सुबह पहुँच सकोगे।'

'क्यों ? तुझे हो क्या रहा है निहालकी माँ ?'

नम्बरदारके घर ढोलककी आवाज़ तेज़ हो गई थी। गीतके बोल और ऊँचे हो गये थे—'साडा चिडयां दा चंबा वे बाबल असीं उड जाणां'।

रात कितनी काली थी। बूढ़े गंगासिंहको अपने पास चारपाईपर बैठी अपनी पत्नीका मुँह नहीं दिखाई दे रहा था।

'कलका दिन निहालको अकेले नहीं होना चाहिए।' बुढ़िया खुद बखुद फिर बोलने लगी। 'कलका दिन मेरे बेटे लिए बहुत कठिन होगा।'

'तुम क्या बातें कर रही हो?' बूढ़े गंगासिंहको सब समझ आ रहा था तो भी उसने पूछा।

'कल नम्बरदारकी बेटीकी बरात आयेगी। आजकलके लड़कोंका कुछ नहीं पता। निहाल मेरा कुछ कर न बैठे।'

'तुम्हारा मतलब क्या है?' बूढ़ा गंगासिंह जान-बूझ कर अनजान बन रहा था।

'निहालका नम्बरदारकी लड़कीके साथ जोड़ था।'

'तुम्हें कैसे पता?' बूढ़ा गंगासिंह सहसा झुंझला उठा। मर्द ज़ात का यह राज़ एक औरतको कैसे पता लग गया था?

'माँ को कौन-सी बात नहीं पता होती? निहालका नम्बरदारकी बेटीसे बड़ा प्रेम था। उन्होंने तो लाख इक़रार किये हुए थे।'

क्या तुम वाही तबाही बोले जा रही हो?' बूढ़ा गंगासिंह अब भी बन रहा था।

'मेरे बेटेकी माँग उससे छिन रही है।' बुढ़िया तड़प उठी। 'पिछली बार जब वह घर आया था तो सैकड़ों बहाने करके यह लड़की हमारे यहाँ आया करती थी। समय-कुसमय चक्कर लगाती रहती।

'बस बस निहालकी माँ!' बूढ़े गंगासिंहका धैर्य छूट चुका था। उसकी आँखोंसे झर-झर अश्रु बह रहे थे।

और बुढ़िया तो बहाना ढूँढ़ रही थी। एक बार उसके अश्रु फूटे तो फिर रोके न रुक सकते।

नम्बरदारके घर ढोलककी आवाज़ थी कि ख़त्म होनेमें नहीं आ रही थी। कभीका गीत गाया जा रहा था 'साडा चिड़ियां दा चंबा वे बाबल असीं उड जाणां।'

और फिर पति-पत्नी नीचे आँगनमें उतर आये। जितनी देरमें बूढ़ा गंगासिंहने अन्दर दालानमें जूता बदला, गलेमें दूध-सा सफ़ेद मलमलका दुपट्टा लिया, अपनी छड़ी ढूँढ़ी, उसकी पत्नी पानीकी भरी एक गागर उठाकर ड्योढ़ीके दरवाज़ेपर जा खड़ी हुई। उधरसे बूढ़ा गंगासिंह आँगनसे निकला, इधर निहालकी माँ जैसे पानी भर कर आ रही हो, उसको रास्तेमें मिली।

हमेशा निहालकी माँ इस तरह करती थी। जब बूढ़े गंगासिंहको किसी कामसे बाहर जाना होता सामनेसे वह पानी लेकर गुज़रती थी। जितनी गम्भीर समस्या हो उतना ही बड़ा पानीका बर्तन वह लिये होती थी। इससे पहले तो गड़वियोंसे ही गुज़ारा चल जाता था, परन्तु आज निहालकी माँ पानीकी भरी हुई गागर उठाई हुई थी। इतनी बड़ी गागरके बोझ तले उसकी कमर लचक-लचक जा रही थी।

जिस तन लागे

इनामदार परेशान था।

इस तरह परेशान तो वह कभी नहीं हुआ था। बड़े-बड़े पहाड़ मुसीबतोंके उसपर आन पड़े थे, बड़े-बड़े पर्वत कठिनाइयोंके उसपर उतर आये थे; और कोई होता तो कुचला जाता। पर इनामदारने कभी पीठ नहीं लगने दी थी। परन्तु अब तो जैसे वह डूबता जा रहा था।

वह सोचता यदि कभी यों हो गया तो उसकी तो नाक कट जायगी। वह कहीं मुँह नहीं दिखा सकेगा।

लेकिन नाक तो कट रही थी। बाहर मुँह निकाल सकता तो आज कितने दिनोंसे अन्दर घरकी चारदीवारीमें क्यों पड़ा रहता? बाहर क़दम रखनेका उसका साहस नहीं था। सारी आयुकी बनाई उसकी आबरू मिट्टीमें मिलनेवाली थी। आठों पहर उसे जैसे बुख़ार-सा चढ़ा रहता। कभी कमरेमें, कभी बरामदेमें, कभी आँगनमें, फिर कमरेमें, फिर बरामदेमें, फिर आँगनमें मछलीकी तरह तड़प रहा था। उसको न खाना अच्छा लगता था, न पीना अच्छा लगता था। दस दिन लड़कीके ब्याहको रह गये थे और अभी न कपड़े खरीदे गये थे, न गहने आये थे, न रसदकी किसीने चिन्ता की थी। यह कैसा ब्याह होने लगा था, उसकी सच्चे मोतियों जैसी एकलौती बेटीका!

और उधर लड़केवालोंने डोमनियाँ भी बुला ली थीं। गुड़ भी बाँटा जा चुका था। और अब बरातियोंको सावन भेजा जा रहा था।

इनामदार गाड़ीके समय बाहर दरवाज़ेपर आ खड़ा होता। डाकके समय दहलीज़ जा संभालता। पर कोई ख़बर नहीं थी उसके भाईकी। छः मास हुए जो कुछ इसने अपनी बेटीके ब्याहके लिए जोड़ा

था वह भी वह ले गया था। अचानक उसे कोई ज़रूरत आन पड़ी थी। और न अब उसने इस फ़सलकी रक़म भेजी थी न और कुछ जो उसने इक़रार किया था। न स्वयं आया था न उसने चिट्ठी लिखी थी। न चिट्ठी का जवाब दिया था। और इधर इनामदारकी बेटीका ब्याह सरपर आ गया था।

अब तो किसीसे कर्ज़ लेनेका भी कोई वसीला दिखाई नहीं देता था। और कोई सबील सूझ नहीं रही थी। इनामदार प्रतीक्षा करता राह देखता थक गया था। उसका जी चाहता दीवारोंके साथ सर मारने लग जाय।

अजीब मुसीबत थी। यदि सगे भाई भी इस तरह करें तो किसपर कोई विश्वास करे? सोच-सोच कर वह थक गया था। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। सारी-सारी रात उसकी करवटें लेते गुज़र जाती। चार दिनके लिए उधार लेकर गया था। न उसने उधार लौटाया था, न इस फ़सल का हिस्सा भेजा था, न आप आया था, न चिट्ठीका जवाब देता था। इस तरहके ग़ैर-ज़िम्मेदार आदमीके साथ कोई क्या कर सकता है? पर वह तो उसका बड़ा भाई था। उसके बापके स्थानपर। और इनामदार यह ख़याल आते ही सरसे लेकर पाँव तक काँप जाता।

और अब पिछले दो दिनोंसे पड़ोसियोंकी मुन्नी इनामदारका एक अजीब सहारा बनी हुई थी। दो सालकी बच्ची तोतली-तोतली बातें करती, सुबहसे लेकर शामतक वह उसे अपनी उंगलीसे लगाये रखता, गोदीमें उठाये रखता। छोटी-छोटी प्यारी-प्यारी बातें। हर समय हँस रही, हर समय खेल रही, मुन्नी उसके पास होती तो वह सब कुछ भूल जाता।

'मुन्नी मेरी मुसीबत टल जायगी कि नहीं?' अकेले बैठे वह उससे पूछता।

'हाँ।'

'मुन्नी बरकतेका ब्याह किस तरह होगा?'

'बढ़िया।'

'मुन्नी ब्याहपर बरकते कैसे कपड़े पहनेगी?'

'लाल लाल।'

'और गहने?'

'यहाँ भी, यहाँ भी, यहाँ भी···' और वह नाक, कान, गले, बाहों को हाथ लगा लगा कर बताती। और फिर इनामदारको अपने आपपर लज्जा आने लगती। यह तो तवक्कुल पूछनेवाली बात हुई। बच्चोंसे अपने दिलकी बात कहलवाकर खुश हो लेना। यह तो कौवोंके हाथ सन्देश भेजनेवाली बात हुई।

इनामदारकी तोंदपर बैठी उसकी मूछोंसे खेल रही मुन्नी उसे अत्यन्त प्यारी लगती। और वह बातें भी तो इतनी करती थी! पटाख् पटाख् बातें करती रहती।

मुन्नीको कोई चिन्ता नहीं थी। इनके आती तो सारा-सारा दिन इन्हींके बैठी रहती। भूख लगती तो खा लेती, भूख न होती तो चाहे सोनेका नवाला दो तो भी परवाह न करती।

एक दिन और गुज़र गया किन्तु उसके भाई की कोई ख़बर नहीं थी। सारी वह रात इनामदारने खिड़कीमें खड़े-खड़े काट दी थी। खिड़की में खड़ा सिगरेटपर सिगरेट फूँकता रहा था।

इनामदार सोचता शायद उसे उसकी करतूतोंकी यह सज़ा मिल रही थी। कितनी कितनी देर करके वह रातको घर लौटता था। दारू पीनेवाले उसके साथी थे। चरस पीनेवाले उसके यार थे। कौन-सा ऐब था जो उसमें नहीं था? दारू पीकर कौन-सी बुराई थी जिससे वह बचे रहते थे?

इनामदार सोचता और अपने कानोंको हाथ लगाता। दिल ही दिलमें लाख लाख माफ़ियाँ माँगता अपने अल्लाहसे, लाख लाख माफ़ियाँ माँगता अपने बच्चोंकी माँ से, लाख लाख माफ़ियाँ माँगता अपने बच्चोंसे।

इनामदार सोचता, कोई उसके सामने ऊँचा बोले तो उसके साथ जाकर वह लड़े, उसकी जान निकाल ले। कोई उसे गाली दे तो वह उसको कच्चा चबा ले। कोई उसकी चुग़ली करे तो खून-खराबा हो। कोई उसकी ओर आँख उठाकर देखे तो वह उसकी आँख निकाल ले। पर जब माँ के पेट से निकला भाई यों चुप साध कर बैठ जाय, यों उसे ज़लील करने पर तुल पड़े तो कोई क्या कर सकता है?

और इनामदार दाँत पीसता रहता। अन्दर ही अन्दर घुलता रहता। अल्लाह से फ़रियादें करता, मन्नतें मानता, बार-बार कानों को हाथ लगाता, कभी क़ुरान को सीने पर रखता, कभी होंठों से लगाता।

पर उसके भाई की कोई ख़बर नहीं थी। उसके घर कच्ची कौड़ी नहीं थी और उसकी बेटी के ब्याह को गिनती के दिन बाक़ी थे।

चिन्ता करता इनामदार हार गया था। और अब पड़ोसियों की मुन्नी ही उसका एक सहारा थी। उधर वह सोकर उठती इधर यह उसे जाकर उठा लाता। उसके जागने से पहले कई कई फेरें मारता रहता, और फिर शाम को जब बातें करते-करते वह सो जाती उठाकर उसे उसके घर छोड़ आता। लौटता और सिगरेटें पीना शुरू कर देता। एक के बाद एक फूँके जाता। सुबह तक खिड़कीमें राखका ढेर लग चुका होता।

इस परेशानीमें मुन्नीका बातोंका जादू-सा असर इनामदार पर होता। मासूम, निःछल, भोली भाली। और फिर वह बार-बार कहती थी कि इनामदारकी मुसीबत ख़त्म हो जायगी। और जब मुन्नी यह कहती वह कितनी प्यारी लगती थी!

और फिर सचमुच उसकी मुसीबत ख़त्म हो गई। उसका भाई आ गया। रास्ते में शहर पड़ता था। वह लड़की के लिये गहने भी ख़रीद लाया था, कपड़े भी ख़रीद लाया था। दर्ज़ी बैठ गये, रसद आ गई। ढोलक लेकर डोमिनियाँ आ पहुँचीं। और गहमा-गहमी शुरू हो गयी। भाई देरमें आया था, परन्तु रास्तेमें इस ईंटी का तो काम करता रहा था। "चिट्ठी काहेको भेजनी थीं?" वह कहता, स्वयं जो वह आ रहा था फिर चिट्ठीकी क्या आवश्यकता थी।

इनामदारकी बेटीका ब्याह बड़ी धूमधामसे हुआ। लड़कीने अत्यन्त सुन्दर लाल जोड़ा पहना और उसके गहेने माथे पर भी थे, कानोंमें भी थे, नाकमें भी थे, गलेमें भी थे, कलाइयोंमें भी थे।

ब्याह हो गया। लड़की अपनी ससुराल चली गयी। बाहरसे आये संबंधी अपने-अपने घर लौट गए।

और इनामदार फिर अपने पुराने ढंग पर आ गया। आधी-आधी रातको घर आता। जब यों देरमें वह घर लौटता था तो उसके मुँहमें से कितनी बू आ रही होती थी। और कई बार शराबमें बदमस्त वह कितना ऊधम मचाता था। बेशक उसकी बेटीका ब्याह हो गया था पर तीन उसके बेटे बाक़ी थे। उनको भी तो कहीं लगाना था। और वह किसतरह पैसेको बरबाद कर रहा था।

और फिर उसकी घरवालीके कानोंमें और ही और ख़बरें पहुँचने लगीं। कोई कहता इनामदार फिर ब्याह करानेको फिरता था। कोई कुछ, कोई कुछ। और आजकल कई बार वह पूरी-पूरी रात घर नहीं लौटता था। कई बार दो-दो दिन बाहर काट आता था। जब लौटता, शराबमें बदमस्त उसकी लाल-लाल आँखोंसे भय लगता था।

इनामदार अपने अल्लाह के साथ किये सब इक़रार भूल गया था। उन दिनों जो वह फ़रियादें करता था, जो वह मिन्नतें करता था, कानों

को हाथ लगाता था, माथे रगड़ता था, इनामदार सब कुछ भूल गया था। घरमें जिससे बोलता, बुरा बोलता। घरमें जो कुछ पकता, उसे पसन्द न आता। ख़ुद कहकर पकवाता था, खाते समय नाक चढ़ाये रखता। सीधे मुँह किसीसे बात न करता, न बेटोंसे न बेटोंकी माँसे।

प्रतिदिन इनामदारकी आदतें बिगड़ती जा रही थीं। अड़ोस-पड़ोस गली-मुहल्ले वाले भी उससे तंग आ गये थे। और इनामदारकी पत्नी आठों पहर चिन्तामें डूबी रहती।

इस आयुमें आकर यदि मर्द बिगड़ जाय तो उसको कौन समझा सकता है? उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है? बेचारी औरतको कुछ समझ न आता। न दिनको सुख न रातको चैन।

और फिर पड़ोसियोंकी मुन्नी उसका सहारा बन गयी। एक बार बच्चीके साथ बैठके उसने बातें कीं और फिर हर समय उसे वह अपने साथ लगाये रखती। छोटी-छोटी उसकी बातें सुनती रहती। छोटी-छोटी उसकी आवश्यकताएँ पूरी करती रहती। मुन्नीके पास बैठे उसे अपनी सब मुसीबतें एक क्षण भरके लिए भूल जातीं। उसकी भोली, अंजान आँखोंमें एक विचित्र सुकून उसे उभर रहा दिखाई देता। और इनामदारको पत्नी कभी मुन्नीको नहलाती, कभी उसके बालोंको सजाती, उसकी हथेलियों पर मेहँदी लगाती। दंदासे से उसके होंठोंको सुर्ख़ी देती, उसकी आँखों में कजला लगाती, उसके साथ छोटे-छोटे खेल खेलती, अपने मनको लगाये रखती, उधरसे मुन्नी सोकर उठती, इधर यह उसे जाकर ले आती। और फिर कहीं रात पड़े उसे अपने घर लौटाती। मुन्नीकी माँ को अवकाश होता तो कोठे पर चढ़ कर अपनी बेटीके साथ लाड हो रहे देख लेती, न फ़ुर्सत होती तो वह सारा-सारा दिन पड़ोसियोंके रहती, वहीं खाती, वहीं खेलती।

मुन्नीके साथ बातें करते इनामदारकी पत्नीको इनामदारका रात देरमें घर लौटना भूल जाता, घर सिरेसे ही न आना भूल जाता। दारू

पीकर बदमस्त लड़खड़ाते क़दम चलना भूल जाता। यह भूल जाता कि उनके पड़ोसी आजकल उसके घरवालेको अजीव अजीव नज़रोंसे देखते थे। यह भूला रहता कि उनकी गली-मुहल्ले वाले आजकल बात-बात पर उसे ताने देते थे, चोटें करते थे।

यों एक शाम मुन्नीको गोदीमें उठाए इनामदारकी पत्नी आँगनमें टहल रही थी कि अचानक इनामदार घर आ निकला। एक जगह पीकर आया था। एक और अड्डे पर जा रहा था। रास्तेमें उसके दिलमें कुछ आया और उसने सोचा एक चक्कर घरका ही लगा ले।

आँगनमें घुसते ही इनामदारने पिछली ओरसे अपनी पत्नीके परेशानीमें पड़ रहे तेज़-तेज़ क़दम देखे। तेज़-तेज़ क़दम जिनकी घबराहट को वह गोदीमें उठाई मुन्नीसे बातोंमें भुला रही थी। हूबहू इस तरह इनामदारके अपने क़दम पड़ते थे, उन दिनों जब संकटका एक भयानक पर्वत उसके सर पर आन पड़ा था। वैसे ही उसने मुन्नीको गोदीमें उठाये हुए था। बाहोंके सहारे उसे उल्हार कर उसके मुँहके साथ मुँह जोड़े बातें कर रही थी। हूबहू वैसे ही जैसे इनामदार किया करता था अपनी परेशानीके दिनोंमें। और वहीं-का-वहीं खड़ा इनामदार हक्का बक्का कितनी देर देखता रहा।

और फिर धीरे-धीरे क़दम वह अपने कमरेकी ओर चला गया। कमरेमें जाते ही वह चारपाई पर लेट गया।

एक फिल्मकी तरह संकटके वह दिन इनामदारकी आँखोंके सामने घूमने लगे। वह दिन जब उसे न खाना अच्छा लगता था न पीना अच्छा लगता था। वह दिन जब सारा-सारा दिन जैसे उसे बुख़ार चढ़ा रहता था। सारी-सारी रात उसकी करवटें लेते गुज़ार जाती थी।

वह दिन जब बार-बार उसका जी चाहता था—"इससे तो आदमी डूब कर मर जाय।" और फिर पड़ोसियोंकी बच्ची उसका सहारा आन

बनी थी। मुन्नीके साथ बातें करता वह अपने मनको बहलाये रखता।

और अब मुन्नी उसकी पत्नीका सहारा बनी हुई थी। उसकी घरवाली परेशान थी। उसके बच्चोंकी माँ वैसे ही तड़प रही थी जैसे कभी वह तड़पा करता था। तेज़-तेज़ क़दम आँगनमें घूमता था।

कितना दुःखी था उन दिनों इनामदार! अगर यह मुन्नी न होती, वह सोचता, उसने तो अपने आपको कुछ कर लिया होता। पड़ोसियों की मुन्नी जो बाहर उसकी बीवीके गले लगी हुई थी। कैसे गर्दनके गिर्द अपनी बाहें लपेट लेती थी और छोटी-छोटी बातोंसे खुश कर देती थी! कहाँसे उसने इतनी बातें सीख ली थीं? पट-पट बातें करती रहती।

उसकी पत्नी संकटमें थी, उसकी घरवाली दुःखी थी जितना दुःखी वह खुद उन दिनों था। मजबूर, बेबस, बेज़बान। किसीको बता भी तो नहीं सकता था कि उसकी कठिनाई क्या थी। उसके अन्दर कैसी आग लगी हुई थी, कोई चीज़ उसे घुनकी तरह खाये जा रही थी।

चारपाई पर लेटे इनामदारको अपनी पत्नीके परेशानीमें तेज़-तेज़ क़दम, होले-होले क़दम दिखायी दे रहे थे। उसकी गोदमें उठाई मुन्नी नहीं दिखायी दे रही थी। आगे बरामदेकी ढलकी हुई बेल आ जाती थी!

और वह क़दम देखता अपने ख़्यालोंमें खोया इनामदार यह भूल गया कि उसे अभी दूसरे अड्डे पर जाना था। अभी तो रात जवान थी।

तितली

तितलीका नृत्य आरम्भ हो चुका था।

इस कम्बख़्त शहरमें कभी कुछ होता ही नहीं था। न कोई अच्छी फ़िल्म आती थी, न कोई और बढ़िया प्रोग्राम कभी बनता था। बस एक उद्योग प्रदर्शिनी होती जिसमें लोग टूट-टूट पड़ते थे। इस नुमायशमें मंत्री भी आते थे, अफ़सर भी आते थे, सेठ भी आते थे, ठेकेदार भी आते थे। वैसे क्लबमें वही लोग, पार्टियोंमें वही लोग, खुशीमें वही लोग, ग़मीमें वही लोग, वही लोग शामको सैरके लिए निकलो तो मिलते, वही लोग बाज़ार जाओ तो नज़र आते।

और आज जब देशके इतने विख्यात कलाकारोंके नृत्यकी सूचना मिली तो सारेका सारा शहर जैसे टूट पड़ा था। मुख्य मंत्रीसे लेकर छोटेसे-छोटे अफ़सर तक सब लोग आये थे। पत्रकार थे, फोटोग्राफर थे, रेडियो वाले थे।

सबसे पहले मुख्य मंत्रीने कार्यक्रमका उद्घाटन किया। फिर कलाकार रङ्गमञ्चपर आये, उनका परिचय दिया गया। फिर सबने मिल-कर एक तराना गाया और नृत्य आरम्भ हुआ।

नृत्यको शुरू हुए कुछ देर हो चुकी थी। पहली चीज़ जो यह लोग प्रस्तुत कर रहे थे वह तितलीका नाच था।

घासके सूखे पत्तोंपर एक अण्डा पड़ा है। इस अंडेको सूर्य आकर अपनी किरणोंसे गरमाता रहता है। फिर इस अण्डेमेंसे एक बच्चा निकलता है। बच्चा इधर-उधर नाचने-कूदने लगता है। इधर मुँह मारता है उधर मुँह मारता है। कभी एक ओर खेलता है, कभी दूसरी ओर चक्कर लगाता है। सूर्यकी किरणें उसे आकर बल-प्रदान करती हैं और फिर तितलीका

वह लारवा फुर करके उड़ जाता है। उधर वह उड़ता है इधर सूर्य खिलखिलाकर हँसने लगता है।

लारवा तितली बनकर उड़ा ही था कि मुझे अपने बायीं ओरसे इत्रकी सुगन्ध आई। मैंने एक आँख उधर देखा मिसेज़ राम पीछे अपनी सीटसे उठकर आगे कहीं जा रही थी। कन्धोंपर नाच रहे बालोंके घूँघर, महीन पतली जार्जेटकी ऊदी साड़ी, इतनी पतली कि साड़ीपर नज़र ज़्यादा जाती थी, मिसेज़ रामकी ओर कम। निचला मोटा लटका हुआ होंठ जैसे लिपिस्टिकके बोझके तले बैठ गया हो। और अन्दर दूधसे सफ़ेद बनावटी दाँत चम-चम कर रहे थे। तेज़ जा रही थी जैसे कोई ज़रूरी बात उसे याद आ गई हो, ऊदे रङ्गके मोतियोंवाले उसके झुमके थर-थर काँप रहे थे।

'यह किधर मुँह उठाये जा रही है?' मेरी पत्नीने जिस ओरसे मिसेज़ राम उठ कर आई थी, उस ओर देखते हुए कहा। प्रोफेसर राम शान्त गम्भीर-सा अपनी बुशर्टके एक कोनेसे ऐनकके शीशे साफ़ कर रहा था। ऐनकके बग़ैर उसकी कमज़ोर नज़रें रङ्गमञ्चपर लगी हुई थीं।

जान-बूझकर शरमानेकी कोशिशमें लचक-लचक पड़ती मिसेज़ राम अभी भी सीटोंके दरम्यान दर्शकोंको उठा रही थी, लोगोंके प्रणाम ले रही थी, मुसकानोंका जवाब हँसीमें देते हुए आगे जा रही थी।

'यह कहाँ मुँह उठाये जा रही है?' मेरी पत्नीने फिर सवाल किया।

'आजके प्रोग्रामके मुख्य प्रबन्धकके साथ जाकर कोई बात करेगी और फिर उसके पास बैठ जायेगी,' मैंने अनुमान लगाते हुए कहा।

मेरी पत्नी हँस दी, जैसे मैं मज़ाक़ कर रहा हूँ।

अभी उसकी हँसी उसके होठोंपर ही थी कि मिसेज़ राम ठीक जैसे मैंने कहा था, नृत्य-मण्डलीको मँगवानेवाली कमेटीके मुख्य प्रबन्धककी ओर गई। उसे अपनी ओर आते देखकर उसने उठकर इसे सत्कार दिया और वह उसके साथ सोफ़ेपर बैठ गई, और इस भाँति बातें करने

लगी जैसे कोई अत्यन्त गम्भीर समस्या हो और उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। बातें करती बार-बार अपने माथेके पसीनेको पोंछे जा रही थी।

स्टेज पर उड़ा 'लारवा' तितलीके रूपमें जैसे एक घासके नर्म पत्ते पर जा बैठा था और रङ्ग-बिरङ्गी तितली जैसे घासकी हरियालीसे शहद की मिठास ढूँढ़ रही थी। नृत्य कर रही प्रवीण कलाकारका अङ्ग-अङ्ग तीव्रतामें थिरक रहा था। पहली बार तितली उड़कर कैसे अपनी ख़ूराक ढूँढ़ती है, इस दृश्यको अत्यन्त सुन्दर ढंगसे दरसाया जा रहा था। कलाकार की हर हरक़त पर लोग वाह-वाह कर रहे थे। कैसे प्यारी तरह वह मुँह मार रही थी; मुँह मारती जैसे टटोल रही हो। अङ्ग-अङ्ग उसका जैसे एक मधुरतामें काँप रहा था। पर्देके पीछेसे आ रही सङ्गीत की धुन कितनी आकर्षक थी। सारा हाल मुग्ध हो रहा था।

और मिसेज़ राम बातें करती जा रही थी। जिसके साथ वह बातें कर रही थी उसकी नज़रें बार-बार रंगमंचकी ओर जातीं, किन्तु मिसेज़ राम तो एक सांस बोलती जा रही थी। रंगमंचकी ओर तक़रीबन तक़रीबन उसकी पीठ थी। निचले होंठको एक तरफ़से अब उसने जैसे दाँतोंके नीचे दबा लिया था और उसका होंठ अब ढलका हुआ नहीं नज़र आ रहा था। कितनी प्यारी लग रही थी मिसेज़ राम!

सारे हालमें तालियोंका एक शोर मच गया। देर तक तालियाँ बजती रहीं। घासपर बैठी मुँह मार रही तितली थककर कुछ इस तरह उठी और वहाँसे उड़कर रंगमंचपर कुछ इस तरह घूमने लगी, हवामें उड़ रहे उसके रंग-बिरंगे पतले महीन वस्त्र, हूबहू मानो एक तितली उड़ रही हो! उड़ रही और आँखें फाड़े इधर-उधर ढूँढ़ रही। उड़ रही और सर घुमा-घुमाकर तलाश कर रही। कहीं कुछ और खानेकी चीज़ हो। यह घास तो बे स्वादा-सा था। मिट्टीकी इसमेंसे बू आ रही थी। और ढूँढ़ती हुई, सूँघती हुई तितली गुलदावदीके पत्तेपर जा

बैठी। गुलदावदियाँ अभी खिली नहीं थीं। जिस भाँति कलाकार ढूँढ़ती हुई किसी पत्तेको चुनकर उस पर जा बैठी, लोगोंने उस अन्दाज़की श्लाघामें फिर तालियाँ बजाना शुरू कर दीं और कितनी देर तालियाँ बजती रहीं।

सामने मिसेज़ राम भी तालियाँ बजानेवालोंमें शामिल थी। ताली बजाती वह उठ खड़ी हुई और अब बायीं ओर आगे चल दी।

मैंने मुड़कर एक नज़र प्रोफ़ेसर रामको देखा। बाहरसे आया कोई लेट तमाशबीन उसके साथ ख़ाली कुर्सीपर बैठना चाह रहा था। प्रोफ़ेसर राम उसे समझा रहा था कि ख़ाली सीट उसकी बीवी की थी जो किसीको मिलने गई थी और अभी लौट आयेगी। परन्तु देरमें आये तमाशबीनने शराब कुछ ज़्यादा पी हुई थी और उसे प्रोफ़ेसर रामकी बात जैसे सुनाई नहीं दे रही थी। प्रोफ़ेसर राम बार-बार हाथ जोड़ता, बार-बार उसके कानोंमें कहता "मेरी घरवाली, मेरी पत्नी, मेरे बच्चोंकी माँ, मेरी बीवी......" पर बाहरसे आये आदमीको तो जैसे कुछ समझ ही नहीं आ रहा था।

और प्रोफ़ेसर रामकी पत्नी आगे ही आगे जा रही थी।

"यह अब कहाँ बहती जा रही है?" मेरी पत्नीने फिर सवाल किया।

"अब यह एजूकेशन मिनिस्टरके पास जाकर बैठेगी। मैंने अन्दाज़ा लगाया।

और अभी बात मेरे होंठोंपर ही थी कि मिसेज़ राम प्रदेशके शिक्षा विभागके मन्त्रीके पास जा बैठी। बैठते ही उसने साड़ीसे अपने फूले हुए बालोंको ढक लिया। और पल्लूको अपनी गर्दनके गिर्द घुमाते हुए और की और बन गई। ऊदे रंगकी साड़ीमें गोरा लिपटा हुआ उसका चेहरा अत्यन्त सुन्दर लग रहा था। मुसकरा-मुसकराकर सिर हिला-हिलाकर कुछ बोल रही थी, कुछ सुन रही थी। हर बातपर जैसे कह रही थी;

यह हो जायगा, यह कौन-सा मुश्किल है ? मैं चाहूँ तो एक पलमें यह करवा दूँ। कुछ इस तरहके आत्मविश्वासमें पटाख़ पटाख़ वह बातें कर रही थी और सुननेवाला सुन-सुनकर हँस रहा था।

और हालमें बैठे सारे दर्शक हँस रहे थे। रंगमंचपर तितली गुल-दावदीके चिकने पत्तेपर बार-बार अपने आपको जमानेकी कोशिश कर रही थी। कुछ पत्ता हल्का था, कुछ पत्ता चिकना था और तितलीके पाँव जमनेमें ही न आते थे। किस घबराहटमें तितली हाथ पांव मार रही थी। कहीं उसका मुँह पड़ जाय, कहीं उसका पैर जम जाय। हाथोंमें ही कोई सहारा आ जाय। और तितली भूखी थी। हवड़-हवड़ कर रही थी। गुलदावदीका पत्ता, उसको लगता, शायद खट्टा खट्टा हो। खट्टे रसको चूसनेका उसका कितना जी चाह रहा था। वह तो पैदा होते ही जैसे जवान हो गई थी। गुलदावदीके पत्तेका कुछ रस और वह कहीं-की-कहीं उड़ जायगी ? उसमें औरके-और रंग भर जायँगे। उसकी पंखड़ियोंमें अधिक बल आ जायगा। और फिर वह गाना शुरू कर देगी। मस्त होकर खेलना शुरू कर देगी। लेकिन यह गुलदावदीका पत्ता कैसा था, उसके पाँव ही नहीं जमने देता था ?

इस सबको रंगमंचपर कलाकार एक अत्यन्त सुन्दर ढंगसे दरसा रही थी। हालमें दर्शकोंकी दृष्टियाँ उसकी प्रत्येक हरकतपर, उसके अंगों की हर कंपनपर लगी हुई थीं।

सहसा मेरे पास बैठी मेरी पत्नीने मेरा ध्यान मिसेज़ राम की ओर दिलाया। वह उठकर और आगे जा रही थी। सबसे अगली सीटपर।

'अब कहाँ जायगी ?' मेरी पत्नीके स्वरमें व्यंग था।

'हाँ, मैं बता सकता हूँ। अब यह मुख्य मंत्रीके पास जायगी। पहले उसकी पत्नीको नमस्ते करेगी फिर मुख्य मंत्रीसे बातें करना शुरू कर देगी।'

मेरा अनुमान कभी भी इतना सही नहीं हुआ जितना मिसेज़ रामके संबंधमें उस दिन ठीक निकल रहा था। मैं पिछले कई वर्षोंसे मिसेज़ राम को देख रहा था। उसके पति प्रोफेसर रामके घर मेरा आना-जाना था। भला आदमी था बेचारा। अपने कामसे काम। सारा समय पढ़ता रहता या लिखता रहता। पहले उसकी तनख़्वाह कम थी अब उसकी तनख़्वाह बढ़ गई थी। उसको कोई फ़र्क नहीं पड़ा। उसने अपने ख़र्च नहीं बढ़ाये हुए थे। हाँ, मिसेज़ रामकी और बात थी। उसे बाल बनवानेके लिए भी जाना पड़ता था, उसके दर्ज़ियोंके बिल भी आये रहते थे, उसके जो दोस्त उसको साड़ियाँ आदि उपहार देते उनको भी तो कुछ-न-कुछ देना होता था।

इधर मिसेज़ राम मुख्य मंत्रीके सोफ़ेके पास जाकर खड़ी हुई, बात करनेके लिए उसने गर्दन झुकायी, उसके बालोंकी लटें उसके गुलाबी गालों पर आकर गिरीं, उधर रंगमंच पर तितली गुलदावदीके फूलसे उड़कर सुनहरी रंगके एक अत्यन्त प्यारे खिले हुए गुलाबके फूल पर जा बैठी। गुलाबकी पत्तियों पर बैठते ही उसने एक नशेमें अपने होंठोंसे रस पीना शुरू कर दिया। गुलाबके फूलको देखकर तितली कितनी ख़ुश हुई थी। उसकी पत्तियोंकी मुलायम छाती पर बैठ कर वह किस तरह मचल-मचल उठी थी! और फिर किस तरह उसने रस पीना शुरू कर दिया था। यह सब कुछ उस कुशल कलाकारने कुछ इस तरह दरसाया कि दर्शकोंको जैसे समझ नहीं आ रहा था, वह कैसे दाद दें। साँस रोके सब बैठे थे और आखें फाड़े एक-एक हरकतको, एक-एक मुद्राको एक नशामें देख रहे थे।

और मिसेज़ राम एक क्षण भरके लिए मुख्य मंत्रीकी पत्नीसे बातें करनेके पश्चात् अब उसके पतिके साथ बातोंमें खो गई थी। किसतरह अपनी आँखें उसपर जमाये हुए थी! एक गाल पर उँगली रखे किस तरह उसकी ओर देख रही थी! उसकी मुसकानें उसकी आँखोंके रास्ते

फूट-फूट निकल रही थीं। उसके बालोंकी एक चंचल लट बार-बार उसके माथे पर आ पड़ती थी और बार-बार वह उसको पीछे करती थी। लटने कुछ इस तरह ज़िद पकड़ ली थी कि फिर फिसल कर आगे आ जाती और हर बार जब लट यों उसके खुले माथे पर आकर गिरती तो मिसेज़ राम कितनी प्यारी लगती थी!

मैंने मुड़ कर देखा, प्रोफ़ेसर रामके पास उसकी पत्नीकी खाली सीट पर लेट आया शराबी कभीका बैठ चुका था। "बाबूजी जब आपकी पत्नी लौट आई तो मैं उठ जाऊँगा।" मेरी पत्नीने मेरे हृदयकी बात समझ कर कहा, "उस शराबीने प्रोफ़ेसर रामको यही जवाब दिया होगा।" और फिर हम दोनों हँसने लगे।

रंगमंच पर सबसे बढ़िया, सबसे सुन्दर, सबसे अधिक प्यारी सुगन्ध वाले गुलाबका रस पी रही तितली मस्तीमें जैसे झूम रही थी। और उधर मिसेज़ राम मुख्य मंत्रीके साथ बातें कर रही इस तरह खो गई जैसे उसे आस-पासकी सुध-बुध ही न रही हो। क्या उसे इतनी बातें करनी थीं? बातें करते जैसे इस औरतका जी ही नहीं भरता था।

और गुलाबका रस पी रही तितली जैसे लबालब भर गई थी। और बदमस्त शराबीकी तरह एक लोरमें, एक नशामें वह वापस अपने ठिकाने की ओर चल दी। इस बार रंगमंच पर कलाकारने आर्टके उन शिखरों को छुआ कि दर्शक सबके-सब अवाक् रह गये। वाद्य संगीतकी धुन अत्यन्त मधुर हो गई। तितली अपनी हर हरकतमें रंग भर रही थी, उसको और अधिक सुन्दर बना रही थी।

"अब मिसेज़ राम कहाँ जायेगी?" मेरी पत्नीने फिर सवाल किया। मुख्य मंत्रीके पाससे उठकर मिसेज़ राम वापस आ रही थी—प्रसन्न, सफल!

"अब जिस ओरसे यह गुज़र रही है या तो किसी फ़ोटोग्राफ़रसे

या किसी अख़बार वालेके पास बैठेगी।" मैंने एक बार फिर अनुमान लगाया।

हमारा ध्यान मिसेज़ रामकी ओरसे सहसा हट गया। स्टेज पर जी भरके रस पी चुकी तितली उड़ती हुई रास्तेमें एक जंगली गुलाबके फूल को देख कर ललचाई हुई उसपर जा बैठी थी। उसका पेट भर गया था पर उसकी आँखें नहीं तृप्त हुई थीं। और न चाहते हुए भी वह उस पर जा बैठी थी। उसको आवश्यकता नहीं थी जब भी वह रस पीनेकी चेष्टा कर रही थी। जंगली गुलाबकी पत्तियों पर बदमस्त गिरी पड़ रही थी।

हम देख-देख कर हैरान हो रहे थे। कैसे कलाकार मनके सूक्ष्म से सूक्ष्म भावोंको अत्यन्त प्रवीणता से दरशा रही थी।

और फिर रङ्गमंचपर रोशनी परिवर्तित होना शुरू हुई। रात हो रही थी। और गुलाब की पत्तियाँ बन्द होना शुरू हो गयीं। तितली बदमस्त पत्तियों में मदहोश पड़ी हुई थी। और पत्तियाँ बन्द होती जा रही थीं, बन्द होती जा रही थीं। तितली अब भी वैसी-की-वैसी पड़ी थी। अधिक पेट भरे हुए की खुमारी। और कदम-कदम बढ़ रही रातके साथ गुलाबकी पत्तियाँ बन्द हो गयीं।

तितली तो पत्तियों में बन्द हो गई थी! दर्शकों का सांस जैसे रुक गया।

मेरी पत्नीने मेरे जोरसे चुटकी ली। सामने मिसेज़ राम किसीके साथ बातें कर रही थी। नौजवान के हाथ में कैमरा था और मेरा अनुमान फिर एक बार ठीक निकला था।

नृत्य ख़त्म हो गया था! दर्शक तालियाँ बजा-बजा कर पागल हो रहे थे। और मिसेज़ राम फोटोग्राफर के साथ क्षण भर खड़ी होकर अब समाचारपत्र वालों के साथ हँस-हँस कर बातें कर रही थी। "नृत्य

कितना बढ़िया था !" जैसे कह रही हो, "मैं तो हमेशा कहती थी इस मंडली को बुलाना चाहिए। पिछले साल भी मैंने यही कहा था। कहीं हमारी कोई सुने भी तो।" कुछ इस तरह की बातें वह कर रही थी।

रंगमंच पर परदा गिर चुका था। लोग अभी तक वाह-वाह कर रहे थे। समाचारपत्र वालों से हटकर मिसेज़ राम एक और आदमी से बातें करने लगी।

उस आदमी का मुझे नहीं पता वह कौन था।

खट्टी लस्सी

"खट्टी लस्सी" तेज का यह नाम उसकी बहन सोमाँ ने रखा था। सर्दियों की एक दुपहरी में धूपमें पड़ा गोरा चिट्टा वह उसे ऐसा लगा मानो खट्टी लस्सी हो। और कितनी देर सोमां उसके छोटे छोटे पैरों को मुँहमें लेकर चबाती, उसके हाथोंको चूमती-चाटती उसके अंग-अंगको सहलाती, बार बार उसे "खट्टी लस्सी" "खट्टी लस्सी" कहती रही और वह खिलखिला कर हँसता रहा। हँस-हँस कर दुहरा होता रहा।

और फिर जब कभी उसे अपने नन्हें भाई पर प्यार आता, उसे वह "खट्टी लस्सी" कह कर पुकारा करती थी।

"खट्टी लस्सी उसे कहती और सोमाँ का अपने भैया के लिए समूचा प्यार जैसे उसकी आँखों में उमड़ आता। वह उसे 'खट्टी लस्सी' कह कर पुकारती, यह सुनते ही वह मुसकराता और बहनके हाथ अपरिमित स्नेह में डूब कर भाईकी ओर फैल जाते, और अपनी छातीसे लगाकर वह उसे भींच-भींच सी डालती। वह खेल रहा होता, दूर से उसे "खट्टी लस्सी" कह कर वह पुकारती, उसका मुख जैसे शहद के घूंट से भरा होता, मीठी मिश्री का स्वाद-सा जैसे आस-पास बिखर जाता।

फिर वह बड़ा हुआ, और बहन भाई जब कभी अकेले होते तो वह उससे पूछा करता "बहन तूने मेरा नाम "खट्टी लस्सी" क्यों रखा था?

बहन को कोई कारण न सूझता। वह भाईके गोरे-गोरे मुखड़े की ओर बार-बार निहारती एक अल्हड़ युवती के मुंह में इमली का नाम सुन कर जैसे पानी भर जाता है, वैसे ही अपने भाई की ओर देखते ही उसके मुंह में पानी आ जाता।

और वह उसे फिर "खट्टी लस्सी" कहती। उसे खट्टी लस्सी कहती

और उसकी उँगलियों को धीरे से मुँह में लेकर दाँतों के नीचे मानो चबा चबा लेती ।

फिर वह और बड़ा हो गया। उसकी बहन और बड़ी हो गई। उसकी बहन का ब्याह हो गया। फिर वह अपने सुसराल चली गई। सुसरालसे बहनके पत्र आते, चिट्ठी देखकर वह तड़प उठता था "कहाँ सोमां ने लिखा है "खट्टी लस्सी" को प्यार? और खट्टी लस्सी अपना यह नाम पत्रमें देख कर उसे ठंडक सी पड़ जाती।

उसकी बहन उसे "खट्टी लस्सी" कहकर बुलाती है, यह बात एक दिन एक पड़ोसी लड़केने बातों-बातोंमे अपने स्कूलके साथियोंको बता दी। "खट्टी लस्सी" नाम सुनते ही एक बच्चेने हँसना शुरू कर दिया। एक को हँसता देखकर बाक़ी वे सब लड़के भी हँस पड़े। हँसते जाते, हँसते जाते। जब हँसी ज़रा धीमी पड़ने लगती तो फिर कोई कह देता "खट्टी लस्सी" और फिर सबके सब बच्चे खिलखिलाने लगते। वह उनके मुख की ओर देखता रहा, देखता रहा और चुपचाप कमरेमें जाकर अपनी किताब खोल कर पढ़ने लग गया।

वह चला गया। बच्चे फिर भी हँसते रहे। फिर एक लड़के को शरारत सूझी, स्कूलके सामनेवाले घरमें गाय थी, वहाँसे वह एक छाछका गिलास ले आया और एक छोटी श्रेणीके लड़केके हाथ गिलास अन्दर भिजवा दिया।

"यह खट्टी लस्सीका गिलास तुम्हारे लिए माई हीरोने भेजा है।" जैसे छोटे लड़केको सिखाया गया था, वैसे ही उसने अन्दर जाकर उसे कह दिया। और सोमाँका भाई तेज क्रोध भरे नेत्रोंसे उस बच्चेकी ओर देखने लगा। बाहर खिड़कियोंके पीछे छिपे हुए लड़कोंने फिर कहना शुरू कर दिया—"खट्टी लस्सी" "खट्टी लस्सी।" "खट्टी लस्सी" कहते और हँसते जाते।

उसी दिन पढ़ते हुए एक लड़केने अपने अध्यापकसे पूछा—"जी, खट्टीको अंग्रेजीमें क्या कहते हैं?" अध्यापकने उसे बताया। दूसरा लड़का बोला—"जी, लस्सीकी क्या अंग्रेजी होती है?" और फिर सब लड़के हँस पड़े। अध्यापककी समझमें कुछ न आया।

अगली घंटीमें स्वास्थ्यके नियम बताते हुए विज्ञानके अध्यापकने कहा—"स्वास्थ्यके लिए हमें दूध, दही और लस्सीका अधिकसे अधिक प्रयोग करना चाहिये।'

"मास्टरजी खट्टी लस्सी भी सेहतके लिए अच्छी होती है?" एक लड़केने खड़े होकर पूछा और बाकी सब लड़के हँस पड़े।

इस अध्यापककी समझमें भी कुछ न आया और वह पढ़ाता रहा, पढ़ाता रहा।

अगली घंटीके शुरूमें तेज एक क्षणके लिए बाहर गया। जब वापस आया तो सामने ब्लैकबोर्ड पर चाकसे लिखा हुआ था—खट्टी लस्सी। उसने यह देखा और उसका चेहरा एकदम तमतमा उठा। लड़कोंने हँसना शुरू कर दिया। इतनेमें अध्यापक आ गया और उसने भूगोल पढ़ाना आरम्भ कर दिया। न इस अध्यापकको ब्लैकबोर्डकी आवश्यकता पड़ी, न उसने ब्लैकबोर्डकी तरफ देखा। इस घंटीके सारे समयमें सामने ब्लैकबोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा रहा "खट्टी लस्सी" और तेज एक पलके लिए आँखें ऊपर न उठा सका।

स्कूलके पश्चात् उसने आँख बचाकर भागनेका प्रयत्न किया पर लड़कोंने जैसे-तैसे उसे घेर लिया। "खट्टी लस्सी, खट्टी लस्सी" कहते गये और हँसते गये। तेज जो अभी तक चुप था झुंझलाकर एक लड़केको ठोकर मार बैठा। फिर क्या था, शेष सभी उस पर टूट पड़े और उसे खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी कहते हुए मार-पीट कर अपने-अपने घर भाग गये।

अगले दिन जब वह पढ़ने आया, स्कूलकी चारदीवारी पर, हलवाई

की दुकान पर, कमरेके दरवाजे पर, ब्लैकबोर्ड पर, जहाँ वह बैठता था हर जगह "खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी," लिखा हुआ था। जिधर उसकी आँख उठती हरी, सफेद, लाल खड़िया मिट्टीसे "खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी" के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखायी न देता।

सहमा सहमा, दुबका दुबका, एक फाखताकी तरह अपने परोंको समेटे वह कमरेके अन्दर अपनी जगह पर बैठ गया। उसे ऐसा लगा मानो उसके दिमागको किसी चीजने जकड़ लिया हो। जैसे उसके कन्धों पर मानो बोझ टूट पड़ा हो, जैसे लाखों आँखें घूर घूर कर उसे देख रही हों, और उसे आँख झपकते ही छलनी-छलनी कर देंगी।

तेज सारे स्कूलमें सबसे सुन्दर, सबसे कोमल और सबसे ज़्यादा बुद्धिमान लड़का था। जो काम दूसरे लड़के न कर सकते वह कर लेता। जो बात दूसरोंकी समझमें न आती वह उसे झट समझ लेता। उसका बस्ता, उसकी किताबें, कापियाँ, हर चीज़ हमेशा साफ-सुथरी होती।

यही कारण था कि लड़के उससे हमेशा ईर्ष्या करते थे। जब भी अध्यापक विद्यार्थियों पर क्रुद्ध होता तो एक वही उनके क्रोधसे बचा रहता। कई लड़कोंको वह अच्छा लगता था पर तेज उनसे हँसता, खेलता, मिलता नहीं था। कई एक को परीक्षामें उसकी नकल टीपनी होती और वह इस काममें उनकी सहायता नहीं करता था।

उस दिन पहली घंटीमें ही अध्यापकने कोई प्रश्न पूछा। सारीकी सारी श्रेणीमें कोई उत्तर न दे सका। तेजको उत्तर भली-भाँति ज्ञात था, पर वह लड़कोंके भयके कारण चुप रहा। फिर अविरल आँसू बहाते हुए सब लड़कोंके समान उसने ,तड़ाक-तड़ाक दो बेंत अपनी हथेलियों पर खा लिये। बेंत लगाकर अध्यापकने सारी श्रेणीको उत्तर लिखवाना आरम्भ किया। तेजने जब डैसकमेंसे दवात निकाली तो स्याही की जगह उसमें लस्सी भरी हुई थी। तेजकी दवात देखकर सारे लड़के अट्टहास कर उठे। हँसते जाते हँसते जाते। अध्यापक कुछ न समझ सका। उसने

खीझकर एक दो लड़कोंके साथ तेजको भी पीट डाला और उसकी लस्सीसे भरी दवातको उठाकर बाहर फेंक दिया।

स्कूलमें, कमरेसे बाहर जिधर भी वह जाता, स्कूलके चपरासी खोंमचे वाले, माली, भंगी, अध्यापक, हेडमास्टर, सब उसे खट्टी लस्सी कह कर छेड़ते। स्कूलकी दीवारें, ब्लैकबोर्ड, दरवाजे, खिड़कियाँ, फर्श, "खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी" से भरे जा रहे थे। स्कूलके लाल लेटर बक्स पर भी किसीने खट्टी लस्सी चित्रित किया हुआ था। शहतूतके नीचे पड़े हुऐ पानीके मटकोंपर सफेद खड़िया मिट्टीसे लिखने वाले बार-बार खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी लिख जाते और बार-बार कहार उन्हें मिटाता रहता।

तेजके मनमें आता कि वह कहीं भाग जाये। छिप-छिप कर वह रोता रहता। हर समय उसे डर रहता कि अभी कोई उसे खट्टी लस्सी कहकर चिढ़ायेगा, और आस-पास खड़े सभी लोग हँस पड़ेंगे। जब कभी उसकी नज़र ऊपर उठती, जहाँ भी उसकी आँख अटकती वहाँ खट्टी लस्सी लिखा होता।

जिस दिन उसकी लड़कोंके साथ मार पीट हुई थी उस दिनसे कोई लड़का उससे बात नहीं करता था। तेज स्वयं भी किसीके साथ नहीं बोलता था। वैसे भी उसका स्वभाव चुप रहनेका था।

श्रेणीके बाहर वह एक क़दम चैनसे नहीं उठा सकता था। और श्रेणीमें दशा यह थी कि लड़कोंको एक अध्यापकके जाने और दूसरेके आनेमें जो समय मिलता, उसमें तेजकी मिट्टी पलीद कर देते।

और फिर एक दिन स्कूलके कमरेमें वह फूट-फूट कर रोने लगा। अगले दिन उसे ज्वर हो गया और वह स्कूल न आया। फिर प्रतिदिन स्कूलके नामसे ही बुखार चढ़ जाता। दोपहरके बाद जब उसका ज्वर उतरता तो उसका जी चाहता कि वह बाहर निकले पर जिस गलीमें वह जाता लड़के "खट्टी लस्सी, खट्टी लस्सी" कह कर उसे चिढ़ाते। बाज़ार

में, खेलके मैदानमें, हर जगह जहाँ भी कोई तेजको देख लेता, धीरेसे खट्टी लस्सी कह देता और बाकी हँसना शुरू कर देते।

अपने लड़के की ओरसे चिढ़ कर उसकी माँने अड़ोस पड़ोससे लड़ना शुरू कर दिया। उसके पिताने एक रविवारको बाजारमें खड़े होकर शरारती लड़कोंके माँ-बापको गालियाँ दीं।

फिर क्या था, जैसे एक आग सारे गाँवमें लग गई। हर जगह खट्टी लस्सीकी पुकार सुनाई देने लग गयी। पंचायतके पंच इस बात पर हँसते रहते, चौपालमें बैठे युवक इस परिहासमें आनन्द लेते, स्त्रियाँ पानी भरती हुई, मन्दिर जाती हुई, गली-कूचोंमें खड़ी, 'खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी' का बखान करती रहतीं।

तेज डरके मारे बाहर न निकलता। घर बैठता तो माता-पिता उस पर नाराज़ होते। उधर स्कूलकी पढ़ाई खराब हो रही थी। इस बातकी चिन्ता स्वयं उसे खाये जा रही थी।

घरमें भी बाहर आँगनमें न बैठता। गलीमें से गुज़रते छोटे-छोटे बच्चे "खट्टी लस्सी" कह कर भाग जाते और वह दाँत पीसता रह जाता। उसकी माँ गालियाँ देती थी और बच्चे और ऊँचे स्वरमें मिल कर कहते "खट्टी लस्सी" और फिर छिप जाते।

रातको सोते-सोते कई बार घबराया-सा वह उठ बैठता। घबराहटसे उसका पसीना छूट जाता। वह डरता हुआ, काँपता हुआ, कुछ-न-कुछ बड़बड़ाता रहता।

एक सांझ लेटर बक्समें एक पत्र डालना था। उसका पिता घर पर नहीं था। उसकी माता रसोईसे निवृत्त नहीं हुई थी। कितनी देरसे वह तेजको पत्र डालनेके लिए कह रही थी। तेज टालता जा रहा था, टालता जा रहा था। अन्तमें उसकी माँ क्रुद्ध हो उठी। तेज माँसे डरता हुआ चिट्ठी लेकर घरसे निकल पड़ा। उसे दो गलियोंमें से होकर गुज़रना था फिर खेलका मैदान और फिर पक्की सड़क पर लेटर बक्स।

तेज एक गलीमें से तो डरता सहमता गुज़र गया। दूसरी गलीमें लड़के गिल्ली-डंडा खेल रहे थे। एक लड़केने उसे देखते ही कहा... "खट्टी लस्सी" और शेष सब खेल छोड़ कर हँसने लगे। तेजका दिल धड़कने लग गया। उसके कदम तेज़ीसे बढ़ने लगे। लड़कोंने मिल कर फिर कहा, "खट्टी लस्सी" और जैसे उसके पीछे-पीछे चलने लगे। तेज एक दम दौड़ने लगा। सबके सब लड़के "खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी" कहते उसके पीछे हो लिये। सामने बाजार था, बाजारमें लोगोंने तालियाँ बजाईं। आगे-आगे तेज और पीछे-पीछे बच्चे, जवान-बूढ़े, स्त्री-पुरुष "खट्टी लस्सी" "खट्टी लस्सी" कहते, तेजको ऐसे लगा मानो एक बाढ़ उसके पीछे चली आ रही हो।

खेलके मैदानमें और लड़कोंने "खट्टी लस्सी खट्टी लस्सी" कहना शुरू कर दिया। तेज दौड़ता-दौड़ता मार्गसे भटक गया, और झाड़-झंखाड़, खेत, खलिहान, पार करता गाँवसे बाहर निकल गया। दौड़ता गया, दौड़ता गया। उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे सारेका सारा गाँव उसके पीछे चला आ रहा हो। आखिर एक झाड़ीके पास वह बेसुध गिर पड़ा।

अंधेरा हो चुका था, जब उसके पिताने उसे गाँवके बाहर जंगलमें पड़ा पाया। ज्वरसे जैसे वह फुका जा रहा था। घर लाकर लाख दवाइयाँ की गईं, डाक्टर आये, हकीम आये, फिर कहीं तेजने आँख खोली। आँख चाहे उसने खोल दी पर तेज किसीको पहचान न सकता था। उसकी आँखोंसे आँसू बहते जाते, बहते जाते। और डाक्टर आये, और इलाज हुआ। फिर पता चला कि तेजका दिमाग़ चल गया है। उसने कपड़े फाड़ना, बाल नोचना, दाँतोंसे काटना और गन्दी गालियाँ देना आरम्भ कर दिया। "आ गये आ गये" कहता और पलंगसे उठ कर भागने लगता। न किसीके समझाये समझता, न किसीके संभाले संभलता। माता पिता बांध-बांधकर उसे रखते, जकड़-जकड़ कर उसे रखते।

माँ बापका एकमात्र पुत्र, अनेक इलाज तेजके हुए। झाड़-फूँक करने वाले आये, मन्त्र पढ़ने वाले आये, मालिश करने वाले सारा सारा दिन मालिश करते रहते। अँग्रेजी दवाइयाँ, देशी दवाइयाँ, किसी प्रकारके इलाजकी कसर न रहने दी गयी। घरमें जब वह अच्छा न हुआ तो उसे अस्पतालमें दाखिल करवा दिया गया। जिस दिन वह अस्पताल पहुँचा, उसी साँझ उसकी बहन सोमां आ गयी।

अस्पताल वालोंने उसे अकेले, शान्त, हवादार कमरेमें रखा हुआ था। घर वालोंको उससे मिलनेकी आज्ञा नहीं थी। पर जैसे कैसे सोमां चुपकेसे तेजके कमरेमें चली गयी।

"खट्टी लस्सी" सोमां ने अरमान भरे स्वर में कहा और उछल कर जैसे अपने भैया के पलङ्ग पर जा गिरी। "खट्टी लस्सी" कहती और उसे चूमती। "खट्टी लस्सी" कहती और उसे छाती से लगाती। "खट्टी लस्सी" कहती और उसकी उँगलियों को दाँतों के नीचे धीरे धीरे दबाती। जैसे घनघोर घटाओं के पीछे से कभी सूर्य बलपूर्वक उभर आता है, वैसे ही तेज के दिमाग़ पर छाया गहरे अन्धकार का आवरण हटना शुरू हो गया। सोमां "खट्टी लस्सी" "खट्टी लस्सी" कहती और तेज के माथे से बीमारी के चिह्न मिटते जाते। उसकी आँखों में चमक सी आनी शुरू हो गई। सोमां उसके हाथों को दबाती, माथे को मलती, गालों को सहलाती, उसके बालों में उँगलियाँ फेरती बार-बार उसे "खट्टी लस्सी," "खट्टी लस्सी" कह कर पुकारती मानो उसे प्रगाढ़ निद्रा से जगा रही हो। कोई पन्द्रह मिनट इसी प्रकार करते रहने के बाद जब सोमां ने "खट्‌टी लस्सी" कहा तो तेज के मानो जकड़े हुए अंग-प्रत्यंग स्वच्छन्द हो गये। उसके ओठों पर मुसकुराहट दौड़ गई। उसने अपनी बहन को पहचान लिया। फिर वे दोनों कितनी ही देर छोटी छोटी बातें करते रहे। "खट्टी लस्सी" सोमां कहती तो उसके भैया की जैसे मैलकी तहें उतरती जातीं। "खट्टी लस्सी" सोमां कहती तो उसका

भैया जैसे रिमझिम फुहार में नहा रहा हो, उसे ठंडक पड़ती जाती। "खट्टी लस्सी" सोमां कहती तो उसकी रगों में जमा हुआ रक्त जैसे गतिमान हो जाता। बार बार वह सिसकियां भरता, और बार बार वह अपनी बहन की आँखों में स्नेह का जीवन देने वाला अपार सागर उमड़-ता हुआ देखता। उसके अंग अंग में शक्ति आती जाती।

उस रात सोमा वहीं रही। अगले दिन वह अपने हँसते खेलते भैया को तांगे में बिठा कर घर ले आई। "खट्टी लस्सी" वह अपनी बहन को पुकारते हुए सुनता तो उसमें इतना बल इतनी दिलेरी आ जाती कि तेज सोचता कि वह तो दीवारों को गिरा सकता है, लाखों से लड़ सकता है।

मीनू

छुट्टी की घण्टी बजी तो बच्चे इस तरह भागते हुए बाहर गैलरी में आ गये जैसे किसी फल से भरपूर बेरी को झिन्झोड़नेसे ढेरों के ढेर बेर किड़-किड़ करते ज़मीन पर आ गिरते हैं।

और फिर एक एक करके जैसे बेरों को चुन लिया जाय, अपने अपने नौकरों के साथ, अपने अपने माता-पिता के साथ, अपने अपने ड्राइवरों के साथ, अपने अपने चपरासियों के साथ बच्चे छितरने लगे। और जिन्हें स्कूल की बसों में जाना था, वह या तो बसों के भीतर जा बैठे या बसों के बाहर मंडलाने लगे। कुछ थे जो झूलों के साथ चिमटे हुए थे, कुछ मैदान में दौड़ रहे थे, कुछ खेल रहे थे, कुछ वृक्षों के साथ झूल रहे थे।

मीनू अपनी कक्षा से निकला। दौड़ता हुआ वह गुलमोहरके उस पेड़ की ओर लपका जिसके नीचे प्रतिदिन उसके पिता का चपरासी उस की प्रतीक्षा कर रहा होता था!

आज पेड़ के नीचे चपरासी नहीं था।

मीनू को हैरानी-सी हुए। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। क्षण भर वह पेड़ के खाली तने की ओर देखता रह गया। फिर वह स्वयं ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चपरासी को शायद आज देर हो गयी होगी।

और मीनू वैसे का वैसा सामने अँग्रेज़ी मिठाई वाले के गिर्द एकत्रित हो रहे बच्चों के पास जा कर खड़ा हो गया।

अंग्रेजी स्कूलों में के० जी० सबसे निचली कक्षा होती है। के० जी० के भी तीन दर्जे होते हैं। और मीनू सबसे निचले दर्जे में था। उसका घर स्कूल से कोई डेढ़ मील दूर था। सुबह वह अपने पड़ौसी बच्चे के साथ उस की मोटर में आता, क्योंकि दोपहर को उस बच्चे को देर से छुट्टी

मिलती थी, इसीलिए मीनू के पिता का चपरासी उसे साइकिल पर लेने के लिए आ जाता।

प्रति दिन चपरासी छुट्टीसे कितनी कितनी देर पहले आकर पेड़के नीचे खड़ा हो जाया करता था। जब छुट्टी होती, गुलमोहरके नीचे मुसकराता हुआ वह मीनूकी प्रतीक्षा कर रहा होता।

पर आज उसे न जाने क्या हुआ था ?

अंग्रेजी मिठाई वालेके पास मीनू खड़ा रहा, खड़ा रहा। मिठाई खरीदने वाले एक एक करके चले गये। मीनू तब भी खड़ा हुआ था।

फिर मीनू उसी प्रकार बस्ता गलेमें लटकाये, बसोंके पास खेल रहे बच्चोंके पास आ गया। बसोंके पास खड़ा मीनू बार-बार गुलमोहरके पेड़की ओर देख लेता। उसका चपरासी अभी तक नहीं आया था। फिर बसें चलनी आरम्भ हो गयीं। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह सबकी सब बसें चली गयीं।

मीनूने देखा उसकी कक्षाका एक लड़का सामने झूले पर बैठा हुआ था।

'तुम्हारा चपरासी आज नहीं आया ?' मीनू जब उसकी ओर गया तो लड़केने लालीपाप मुँहसे निकाल कर पूछा।

'नहीं ! और मीनूकी आँखोंमें आँसू आ गये।

'कोई बात नहीं' लड़का झट झूलेसे उतर कर उसके निकट चला आया। फिर दोनोंने अपनी बाहें एक दूसरेके गलेमें डाल दीं। और उद्यानमें तितलियाँ पकड़ने लगे। कितना समय इसी प्रकार व्यतीत हो गया। और फिर उस लड़केका बाप आकर उसे भी ले गया।

'इसका चपरासी आज इसे लेने नहीं आया' जाते समय मीनूके उस सहपाठीने अपने पिताको मीनूके विषयमें बतलाया।

'कोई बात नहीं, अभी आ जायेगा।' उसके बापने उत्तर दिया और वह अपनी मोटर में बैठकर चले गये।

मीनू फिर अकेला रह गया था। गुलमोहरके नीचे चपरासी अभी तक नहीं आया था।

मीनूने देखा, दूर खेलके मैदानके दूसरे सिरे पर कुछ बच्चे खेल रहे थे। कड़ी धूप थी। बच्चे पर्याप्त दूरी पर थे, तो भी मीनू धीरे-धीरे उनकी ओर चल दिया।

यह तो सब अपरिचित लड़के थे। गुलेहरियोंके समान पेड़ों पर चढ़ जाते और छलाँगें लगाकर नीचे आ जाते। मीनू कितनी देर तक चुपचाप उनकी ओर देखता रहा। फिर उनकी हँसीके साथ उसने हँसना आरम्भ कर दिया। पर मीनू इतना छोटा था, वह इतने बड़े थे। एक बार मीनूकी ओर गिरा डंडा भी मीनूने उठाकर उन्हें दिया, तो भी उन्होंने मीनूके साथ बात न की। और उसी प्रकार खेलमें रत रहे। फिर उन बच्चोंके भी नौकर बुलाने आ गये, उनके माता पिता आवाजें देने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि ये बच्चे स्कूलके गिर्द बनी कोठरियोंमें रहने वाले थे। और एक एक करके वह भी चले गये।

और मीनू फिर अकेला रह गया।

कन्धे पर अपना थैला उठाये मीनू फिर गुलमोहरकी ओर चल दिया। पेड़के नीचे चपरासी अभी तक नहीं आया था।

धूप तेज़ थी। मीनूको प्यास लगनी आरम्भ हो गयी। धूप लगनी आरम्भ हो गयी। मीनू चलते चलते और खड़े खड़े थक गया था। और फिर मीनू गुलमोहरके पेड़के नीचे बैठ गया। तनेके साथ पीठ लगाए बैठा बैठा वह सो गया।

मीनू कितनी देर तक सोया रहा।

फिर अकस्मात् मीनूकी आँख खुल गयी। स्कूलमें पूर्ण निःस्तब्धता थी। बच्चे जा चुके थे। अध्यापक जा चुके थे। जमादार सफाई कर चुके थे। चौकीदार खिड़कियाँ और द्वार बन्द करके छुट्टी कर गये थे। अप्रिय नीरवता! दीवारें जैसे खानेको आ रही थीं। वृक्ष शांत

और चुप खड़े थे। मीनू भयभीत हो गया। उसके शरीरका रक्त जैसे सारेका सारा सोख लिया गया हो।

मीनू उठकर खड़ा हुआ। उसकी आँखोंके सामने चक्कर आये, फिर अन्धकार छा गया। एकाएक मीनू चीख उठा। और फिर फफक फफक कर रोता वह स्कूलके फाटककी ओर हो लिया।

स्कूलके फाटक पर खड़े मीनूकी आँखें छम-छम आँसू बिखेरती रहीं। सामने सड़क पर रंग-रंगकी मोटरें गतिशील थीं। बसें जा रही थीं। ताँगे जा रहे थे। रिक्शाएँ जा रही थीं। लोग पैदल जा रहे थे। और फिर मीनू जैसे इस तमाशेमें खो गया। उसकी आँखोंमें आँसू सूख गये।

सड़ककी गहमागहमी देखता मीनू अपने थैलेको झुला-झुला कर खेलने लगा। फिर कङ्करियाँ उठाकर सामने नालीमें पड़े हुए डिब्बेका निशाना बनाने लगा। फिर फाटकके एक पट पर खड़ा होकर कभी उसे खोल देता कभी उसे बन्द कर देता। फाटककी चरमराहट उसे बड़ी प्यारी लगती। फिर मीनू गेटके बाहर ईटोंके चबूतरे पर बैठकर सड़क पर आ जा रही मोटरोंकी गणना करने लगा। मीनू गिनता जा रहा था, गिनता जा रहा था......

'बच्चे तुम्हें किसकी प्रतीक्षा है ?'

और मीनूको एकाएक यह बोध हुआ कि वह तो अकेला वहाँ रहा गया था। आज घरसे उसे कोई लेने नहीं आया था। वह भूखा प्यासा खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था

मीनू बार-बार दूर सड़कके उस ओर देखता, जिस ओरसे उसके पिताकी हरी मोटर आ सकती थी। उसके पिताका खाकी वर्दीवाला चपरासी आ सकता था।

'बच्चे तुम्हें किसकी प्रतीक्षा है ?' साइकल वालेने फिर पूछा।

'मुझे कोई लेनेके लिए नहीं आया' मीनू अब भी दूर सड़ककी ओर देख रहा था।

'तुमको किसने लेने आना था ?'

'मेरे डेडीके चपरासीने।'

'और यदि वह न आया तो ?'

'मेरे डेडी आ जाएंगे।'

'तुम्हारे डेडी कहाँ काम करते हैं ?'

'बड़े दफ्तर में'।

'तुम लोग कहाँ रहते हो ?'

'पटौदी हाउस'।

'तुम्हें मैं घर छोड़ आऊँ ?'

'नहीं मेरे डेडी आएंगे।'

'तुम्हें पक्का पता है ?'

'हां मेरे डेडी अवश्य आएंगे'।

कभी बाप भी अपने बेटेको भूल सकता है। मीनूके चेहरे पर पूर्ण विश्वासकी झलक थी। साइकल वाला चला गया।

मीनूको अब अपनी मांकी बात याद आने लगी। स्कूलके बाहर अकेले एक कदम भी नहीं रखना। अपने चपरासीके अतिरिक्त और किसीके साथ घर नहीं आना।

और मीनूको साथी बच्चोंकी सुनाई कई कहानियाँ याद आने लगीं। कैसे कई लोग बच्चोंको पकड़ लेते हैं। और थैलोंमें बन्द करके उन्हें दूर ले जाते हैं। दूर बहुत दूर, जंगलोंमें, पहाड़ोंमें, जहाँ शेर होते हैं, हाथी होते हैं। और वहाँ बच्चेको पेड़के साथ उलटा-उलटाकर उसके सिर के नीचे आग जलाई जाती है। और इस प्रकार भुने जा रहे बालकके सिरमेंसे जो रस निकलता है उसे 'ममियाई' कहते हैं।

'ममियाई' निकालने वालेका विचार आते ही मीनू फिरसे चीख पड़ा। और हड़बड़ा कर सामने सड़क पर दौड़ने लगा। मीनू दौड़ता गया, दौड़ता गया। कुछ देर बाद थककर उसने चलना आरम्भ कर

दिया। रास्तेमें एक छाबड़ीवाला उसे 'बूढ़ीके बाल' बेचता हुआ मिला। मीनू उसकी ओर देखने लगा। खड़े-खड़े वह कितनी देर तक उसे देखता रहा और फिर उसकी पीठ दूर सड़क पर अदृश्य हो गयी।

मीनू पुनः सड़क पर चलने लगा।

आगे दो सड़कें थीं। एक दायें मुड़ती थी और एक बायें। मीनू ठीक बायें हाथ वाली सड़क पर हो लिया।

अभी बहुत दूर तक नहीं गया था कि एक गोल चक्कर पर सात सड़कें आकर मिलती थीं। मीनू हमेशा मोटर पर आता था और हमेशा साइकल पर जाता था। आज पैदल जो चलना पड़ा तो आस-पास औरका और लग रहा था। गोल चक्करके उस ओर एक सड़क थी जो सीधी मीनूके घरतक जाती थी और चक्कर काटता-काटता मीनू गलत सड़क पर पड़ गया।

मीनू ज्यूँ-ज्यूँ चलता, सड़कके किनारेके घर उसे नये-नये लगते। ज्यूँ-ज्यूँ उसे घर अपरिचितसे लगते, त्यों-त्यों वह घबराता। उसके माथे पर पसीना आता। उसका मुँह लाल होता जाता। एक कदम आगे रखता तो जैसे दो कदम उसके पीछे पड़ते। उसे लग रहा था कि वह गलत सड़क पर जा रहा था। तो भी वह चलता गया—भूखा, प्यासा, थका, हारा।

और फिर एकाएक मीनू खिल उठा। सामने वह अस्पताल था जिसमें छह माह पहले उसका इलाज हुआ था। कोई एक वर्ष हुआ यहाँ उसकी माँ रही थी, जब मीनूकी छोटी बहन आई थी। मीनूने सोचा यहाँसे अपने घरका रास्ता उसे अवश्य ज्ञात है। और दौड़कर वह सड़कके पार जाने ही लगा था कि पीछेसे तेज़ आ रही एक मोटर चिचलाती हुई मुश्किलसे उसके पास आकर रुक सकी। ब्रेकोंके लगने पर, हार्नके शोर पर, और मोटरके इस प्रकार उसके सिरपर आकर रुकने पर मीनू बौखला गया। उसकी आँखोंके सामने भयंकर चक्कर आयें,

घोर अन्धेरा छा गया। पता नहीं फिर वह कैसे सड़कके किनारे फुटपाथ पर पहुँच गया। फिर पता नहीं किधर-का-किधर वह सड़कोंके चक्करमें खो गया। एकमें-से-एक सड़क, उसमेंसे और सड़क, मीनूको कुछ ज्ञात नहीं था कि वह किस ओर जा रहा है।

और मीनू रोने लगा।

रोता जाता और चलता जाता। मीनूको एक माली मिला। 'बच्चे तुम क्यों रो रहे हो?' मालीने उससे पूछा। पर मीनूने मालीको कोई उत्तर न दिया। कुछ और आगे जाकर उसके पाससे एक मोटर गुज़री। एक पुरुष और एक स्त्री उसमें बैठे हुए थे। पुरुषने स्त्रीसे रो रहे मीनूकी ओर संकेत करके कुछ कहा। और मोटर उसी गतिसे आगे निकल गयी। मीनू रोये जा रहा था और चलता जा रहा था। फिर उसको एक शरणार्थी स्त्री मिली। 'हाय रे बालक तू क्यों रो रहा है?' उसने मीनूसे पूछा।

मीनू उत्तर दिये बिना आगे चला गया। और वह स्त्री कितनी देर ठोढी पर उँगली रखे उसकी ओर देखती रही। किसीका निर्मल मोतीके समान बच्चा है और कैसे लहूके आँसू रोये जा रहा है—उसकी आँखें कह रही थीं।

फिर मीनूको एक सिपाहीने देख लिया। सिपाही जैसे-तैसे उसे टेक्सीमें डालकर थाने ले गया। मीनू चीख़ रहा था, चिचला रहा था। थाने पहुँचा कर पुलिसवालोंने उसे 'कोका कोला' पिलाया, फिर मिठाई खिलाई और धीरे-धीरे उससे उसके घरका पता पूछ लिया।

पुलिसका सिपाही जब मीनूके घर पहुँचा तो माता-पिता दोनों सोए पड़े थे।

बात यूँ हुई कि जो चपरासी मीनूको लाता था वह छुट्टी पर था और उसका बाप बच्चेको मँगवाना भूल गया था। माँ कहीं बाहर गयी

हुई थी। बापके बाद घर लौटी। दोपहरका भोजन करके दोनों सो गये।

और अब जब सन्तरीने जाकर यह समाचार दिया तो दोनों घबराये हुए मोटर लेकर भागे आए।

थाने पहुँचकर दौड़कर माँ बच्चेको गले लगानेके लिए आगे बढ़ी। पर मीनू पीछे हट गया। माँ हैरान उसकी ओर देखने लगी। फिर पिता उसे प्यार करनेके लिए आगे बढ़ा। मीनूने इस प्रकार उसकी ओर देखा जैसे वह कोई अजनबी हो, उससे जान-पहचान तक न हो।

'क्यों बेटा यह तुम्हारे डेडी नहीं?' थानेदारने मीनूसे पूछा।

'नहीं' मीनूने अति कठोर होकर उत्तर दिया।

'और यह तुम्हारी माँ नहीं?' थानेदारने मीनूकी माँकी ओर संकेत करके कहा।

'नहीं' मीनूने फिर उसी कठोरतासे उत्तर दिया।

और फिर मीनू फूट-फूटकर रोने लगा।

बिशू और बिशूके बेटे

विशू अब बूढ़ा हो गया था। ठोंडी पर धागेसे बँधी हुई उसकी दाढ़ी सफेद हो गई थी। धुँधली पड़ रही उसकी आँखों पर भवें दुधिया गई थीं। पीपलकी छाँहमें चबूतरे पर बैठा हुआ वह दिनभर अब ताश नहीं खेला करता था। और अब उसे कुँएके पासवाले मैदानमें किसीने लड़ते हुए भी कभी नहीं देखा था। बिशू अब अपने छोटे बेटेकी छावड़ीके पास भी न बैठता था, कहीं लेने-देनेके मामलेमें उसकी किसीके साथ कहा-सुनी न हो जाए।

शामको गुरुद्वारेमें विशू 'रहरास साहब' का पाठ सुननेके लिए जाता। सवेरे सबसे पहले माथा टेकनेके लिए वह पहुँचा होता। दिनभर अपने पोतेको उठाये हुए खिलाता रहता। जब उसकी पत्नी या उसकी पतोह कुएँ पर पानी भरने आतीं तो वह कुएँमें से पानीकी बालटियाँ निकाल-निकालकर उनके घड़े भरता रहता। अगर उनके साथ पड़ोसकी भी कोई औरत होती, तो वह उसके घड़ेमें भी पानी भर देता। गलीमें कोई पत्थर, ठीकरा पड़ा होता तो उसको उठाकर एक ओर कर देता। तकियेके चबूतरे पर चिड़ियोंके लिए दाने बिखेरता रहता। खादीके साफ़-सुथरे कपड़े पहनता। आजकल उसका जूता भी कभी मैला न होता।

परन्तु बिशूकी जवानीकी कुछ और ही कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। उसने कई बार सेंध लगाई थी, अनगिनत चोरियोंके अपराधमें पकड़ा गया था। अपने बच्चोंकी माँको वह कहींसे भगा लाया था। बहुत दंगा-फसाद हुआ, झगड़ा हुआ। गाँवके हर प्राणीके साथ उसकी 'तूँ-तूँ मैं-मैं रहती। जिस तरह उसने गाँवके चौधरीकी बहूकी बालियाँ

नोचीं थीं, वह घटना आज तक किसीको भूली नहीं थी। आधी रातको भरेपुरे आँगनमें सोई हुई लड़कीके कानोंमें पड़ी हुई बालियोंसे उसने रबड़की डोरी बाँधी और स्वयं आँगनकी बेरी पर चढ़ गया। ऊपर पहुँच कर उसने डोरी खींची, लड़की बिलबिला उठी, पर कानोंको चीरती हुई बालियाँ खिचीं और बेरी पर जा पहुँचीं। घरवाले लाठियाँ उठाये, भाले उठाये चोरको ढूँढ़ने दौड़ पड़े और चुपकेसे विशू बेरी परसे उतरा और गाँवके लोगोंके समूहमें शामिल हो गया। अगर वह सुनारके पास बालियाँ बेचते हुए न पकड़ा जाता तो किसीको उसकी करतूतका पता न चलता। और जब ईसरोका जवान बेटा मरा। इतनी कहरकी मौत पर घरवालोंके होश उड़े हुए थे। उधर लोग उसकी अर्थी लेकर निकले इधर विशूने सुनसान घरका सब कुछ लूट लिया। लगातार कई चोरियोंके अपराधमें पकड़े जानेके कारण, विशेष तौर पर चौधरीकी बहूके कानोंका जो उसने सत्यानाश किया था, गाँववालोंने विशूका नाम 'दस नम्बरियों' में लिखा दिया।

और लोग उसे विशू दस नम्बरिया कहने लगे।

दस नम्बरियोंमें उसका नाम होनेके कारण इलाक़ेमें जहाँ कहीं भी चोरी होती, विशूकी जान आफ़तमें आ जाती। हर रात उसे नम्बरदारके घर हाज़िरी देनेके लिए जाना पड़ता था। गाँवमें कोई सिपाही आता तो उसे उसकी अर्दलीमें रहना पड़ता। पाँव दबाता, मालिश करता, उसके घोड़ेके लिए चारा काटकर लाता, उसकी ठोकरें खाता, गालियाँ सुनता। कई चोरियोंका विशूको कुछ पता न होता, मार खा-खाकर, झूठमूठ हाँ कर देता और छः-छः महीने साल-सालकी क़ैद काट आता।

और ऐसे ही अपमानका पल-पल गुज़ारता हुआ विशू बूढ़ा हो गया। उसके बच्चे जवान हो गये। उसके एक बेटेने दसवीं पास कर ली। उसकी दो बेटियोंका क़द पेड़ जितना ऊँचा हो गया। उसका एक और बेटा शादीकी उम्रको पहुँच गया। उसके दो और छोटे बेटे थे।

बिशू दस नम्बरिया था, इसलिए उसके बेटेको कोई नौकरी नहीं देता था। बिशू दस नम्बरिया था इसलिए उसकी बेटियोंका कोई रिश्ता नहीं लेता था। बिशू दस नम्बरिया था, इसलिए उसके बेटोंको बीवियाँ नहीं मिलती थीं, और ब्याहे जाने योग्य बेटे गाँवका बोझ थे। ब्याही जानेवाली बेटियाँ सारे गाँवकी चिन्ता थीं। सोच-सोचकर आखिर गाँवके पञ्चोंने बिशूका नाम दस नम्बरियोंमें से कटवा दिया। ऊँचे-ऊँचे क़दके बच्चों और सफेद दूधिया दाढ़ीके होते, लोग सोचते, कि बिशू अब कहाँ चोरी कर सकता है, कहाँ डाके डाल सकता है।

नाम कटनेकी देर थी कि बिशूका बेटा 'मोरगाह' तेलके कारख़ानेमें भरती हो गया। पहले उसकी एक बेटीका रिश्ता आया। फिर दूसरी भी ब्याही गई। कारख़ानेमें बिशूके बेटेका काम था मोमबत्तियोंको गिन-गिनकर डिब्बोंमें डालते जाना। डिब्बोंको बन्द करनेवाले और थे। बिशूका बेटा अपने काममें इतना निपुण हो गया था कि कुछ दिनोंके बाद ही उसके हाथमें उतनी ही मोमबत्तियाँ आतीं जितनी डिब्बेमें पड़ सकतीं। गिननेकी उसे आवश्यकता ही न होती। आँख झपकनेकी देरमें वह डिब्बे भरकर अपने सामने फेंकता जाता। जो काम दूसरे सारे दिनमें करते बिशूका बेटा उसे एक घण्टेमें निपटा कर अलग हो जाता। फिर वह अपने हिस्सेके डिब्बोंमें मोमबत्तियाँ भी भरने लगा, डिब्बे बन्द भी करने लगा और उनपर ट्रेडमार्क भी चिपकाने लगा।

अफ़सर बिशूके बेटेकी फुरती पर चकित थे। उसे तरक्की पर तरक्की मिलनी शुरू हुई। अभी एक साल ही नहीं गुज़रा था कि वह फोरमैन बन गया। पूरे दो सौ रुपये उसका वेतन था। साथमें और कई सुविधाएँ भी थीं।

बिशू अब फोरमैनका बाप था। उसने उजले कपड़े पहनने शुरू कर दिये। बिशूका एक और बेटा खोंचा लगाता था। वह भी दाल-रोटी कमा लेता था

विशूकी आमदनी गाँवमें कई लोगोंसे अधिक थी।

विशूके फोरमैन बेटेके लिए रिश्ते आने शुरू हो गये। और फिर उसने एक अच्छे घरका रिश्ता स्वीकार कर लिया।

विशूका असली नाम विशनसिंह था।

फिर विशूके बेटेकी शादी हो गई। मैकेकी ओरसे विशूकी बहू इस गाँवके कई कुलीन घरानोंसे सम्बन्धित थी। गाँवके पञ्चोंकी बहू विशूकी बहूके साथ उठती बैठती, हँसती, खेलती। कभी किसी घरमें शादी या मातम होता तो विशू वहाँ ज़रूर पहुँचता। कई झगड़ोंको वह बीचमें पड़कर निपटा देता। गुरुद्वारेका जब नया चबूतरा बना तो विशूने वहाँ अपने नाम संगमरमरकी शिला लगवाई। उसके ऊपर लिखा था सरदार विशनसिंहने ५० रुपये अपने पिता चौधरी भगवानसिंहके नाम पर भेंट किये।

लोगोंको अब याद भी नहीं रहा था कि विशूका बाप 'भगवाना' गलियोंमें सड़-सड़कर मरा था। उसके शरीरमें कीड़े पड़ गये थे। उसकी लाश उठानेके लिए कोई आगे नहीं आता था।

फिर विशूके घर पोता हुआ। ढोल और शहनाइयाँ बजीं। मिठाइयाँ बँटीं। हर कोई विशूको बधाई देने आया। विशूने जी भरकर अपने अरमान निकाले। गाँवका सबसे बड़ा चौधरी अपनी बहूके नोचे हुए कान भूलकर विशूकी सलाह लेनेके लिए कभी-कभार आता। विशूके बेटेके ओहदेसे लाभ उठाते हुए गाँवके लोग मिट्टीके तेलके क़ारखानेसे सस्ता तेल निकलवा लेते। बहुतोंके बेटोंको विशूके बेटेने क़ारखानेमें भरती करवा दिया और लोग उसके एहसानका ज़िक्र करते न थकते। विशूके बेटेकी साईकल गाँव भरमें सबसे बढ़िया थी। दीवालीके दिन उनके यहाँ सबसे ज़्यादा मोमबत्तियाँ जलती थीं।

विशूकी बहू प्रति दिन रेशमी कपड़े पहनती, पाऊडर लगाती,

सुर्खियां मलती, गहनोंसे सदा लदी रहती। पड़ोसिनें हैरान थीं कि कैसे चौथे दिन वह एक नया गहना बनवाती है?

बिशू खुश था, बहुत खुश था। वह सोचता कि अपनी शेष आयु शराफ़तसे गुज़ार कर वह अपने गुनाहोंको माफ़ करवा लेगा। थोड़ा बहुत पाठ भी उसने कंठस्थ करना शुरू कर दिया। कंगालों-ग़रीबोंको वह घरसे कभी खाली हाथ न लौटाता। अपनी पत्नीको हमेशा 'भागवान' कहकर पुकारता।

बिशूने एक भैंस रखी। एक गाय रखी। ज़ैलदारका जिस घोड़ीके लिए सौदा न हुआ वह उसने ख़रीद ली। ग़रीब मज़दूर उसके घर छाछ लेनेके लिए आते। अडोस-पड़ोसमें उसकी पत्नी दही और मक्खन भेज-भेज कर मेल-मिलाप बढ़ाती।

कच्चे कोठोंको गिरा कर बिशूने उन्हें पक्का कर दिया। ऊपर चौबारा बनवाया जिसमें उसका फोरमैन बेटा और उसकी बहू रहते थे। साथ वाला कोठा खरीद कर उसने अपने आंगनको खुला कर लिया।

बिशूके नये घरके कई दरवाज़े हो गये थे। हर रोज़ रातको सोने से पहले, वह एक-एक दरवाज़े और एक एक खिड़कीको अच्छी तरह स्वयं बन्द करता। ऊपरके चौबारेके दरवाज़े जब उसका बेटा और बहू खुले छोड़ कर सो जाते तो वह उन पर नाराज़ होता। बिशूको चिन्ता रहती कि उनका घर दांईं ओरसे भी सूना था और बांईं ओरसे भी गली वीरान थी।

कई बार रातको सोते-सोते वह हड़बड़ा कर उठ बैठता, पता नहीं वह कैसे-कैसे बुरे स्वप्न देखता रहता था। एक बार उसकी भैंस दीवारमें अपना सींग मार रही थी, बिशूको लगा जैसे कोई उसके घरमें सेंध लगा रहा हो और उसने सारे कुटुम्बको जगा दिया।

सर्दियोंकी एक रातको जब बाहरसे बिशू देरसे लौटा तो उसने नियम पूर्वक हर खिड़कीको देखा, हर दरवाज़ेकी कुंडीको हाथसे खींच अपना

संदेह दूर किया। हर कोनेमें झांका और इस तरह भूसे वाले कमरेमें दाख़िल हुआ...क्या देखता है कि एक चोर वहाँ छिपा बैठा है। बिशूको देखते ही वह उसके पाँव पर गिर पड़ा। बिशूने आव देखी न ताव, उसीकी पगड़ी उतार कर उसकी मुशकें कस दीं और उसे कमरेमें बन्द कर दिया।

बिशू अब सोचने लगा कि वह घर वालोंको जगा कर उन्हें बताये या न बताये? नम्बरदारको सूचना दे या न दे? उसे अपने कष्ट याद आते। पुलिस वालोंने उसे भी कई बार यूहीं पगड़ीसे बाँधा था। पुलिस वाले कितना पीटते थे...छतसे टांग टांग कर, ज़मीन पर लिटा-लिटा कर और फिर जो कई बार तीन तीन दिन सोने नहीं देते थे, मिरचोंका धुआँ नाकसे चढ़ाते। और इस तरह सोचता हुआ बिशू सो गया।

अगले दिन वह सवेरे तड़के उठा। घरके बाकी लोग अभी तक सोये पड़े थे। भूसे वाले कमरेमें जा कर उसने चोरकी मुश्कें खोल दीं। और गुड़की पाँच भेलियाँ उसके हाथमें थमाते हुए उसे बाहर धकेल दिया।

फिर नियमानुसार बिशू कुंएँ पर जा कर नहाया। नियमानुसार गुरुद्वारे माथा टेकने गया और फिर नियमानुसार घोड़ी ले कर लोगोंके छोटे-मोटे काम करनेके लिए खेतोंकी ओर निकल गया। कोई बारह बजे नियमानुसार बिशू खाना खानेके लिए घर लौटा। क्या देखता है कि पुलिस उसके आंगनमें बैठी है और उसके घरका सारा सामान उन्होंने बाहर निकाल कर रख दिया है: सबसे अन्दर वाली कोठरीमें रखे हुए तेलके कनस्तर, जिस्तसे भरी हुई बालटियाँ, ग्रीसके टीन, मोमबत्तियोंसे भरी हुई बोरियाँ, ट्रंक, सन्दूक, डोल, देगचियाँ, 'मोरगाह'के कागज़ोंके रिमोंके रिम, 'मोरगाह'के दफ्तरकी पैन्सिलें, कलम, निबें, स्याहियोंकी बोतलें, मोरगाहके कारख़ानेके पेच, रैंच, पलास, हथौड़ियाँ, मोरगाहके रंग, वारनिश और कलईका सामान।

बिशू स्तब्ध रह गया। मोरगाहमें काम करने वाला उसका फोरमैन बेटा आज सवेरे जाते ही पकड़ा गया। किसीने शिकायत कर दी थी और पुलिसकी डांट-डपट पर उसने सब कुछ बक दिया था।

वकीलोंके कहने-सुनने पर बिशूने अपने बेटेके मुकद्दमें की पूरी पूरी पैरवीकी। घरमें जो कुछ भी था, बिक गया। भैंस बिक गई, गायें बिक गईं, घोड़ी बिक गई, मकान बिक गया। सारी जमा पूंजी पानीकी तरह बह गई और अन्तमें बिशूके बेटेको तीन सालकी सज़ा हो गई।

जिस दिन उसका पति पकड़ा गया, बिशूकी बहू अपने मायके चली गई। गाँवके लोगोंको क्या मुंह दिखाती! बिशूके बेटेको सज़ा हुए अभी दो दिन हुए थे कि वह किसीके साथ भाग गई। सारेका सारा अपना ज़ेवर उसके पास था। जो गोखरू और बालियां बिशूकी पत्नी अपने साथ लाई थी, वह भी बहूरानी समेट कर अपने साथ ले गई।

मुकद्दमेंके बखेड़ोंमें उलझा हुआ बिशू कभी गुरुद्वारे जाता, कभी न जाता। धीरे-धीरे उसका गुरुद्वारे जाना छूट गया। मुकद्दमेंकी मुसीबतों का मारा बिशू हर समय चिड़चिड़ा सा रहता। बात-बात पर उलझने को उसका जी चाहता। कभी अपने ऊपर काबू पा लेता, कभी न पा सकता। भीख मागने वाले और फकीर उसे एक आँख न भाते। कई बार दरवाज़े पर खड़े हुए किसीको देख कर वह उसे मारनेके लिए दौड़ता। पीपलकी छाँहमें उसका बैठना बन्द हो गया। उसने तकियेकी ओर जाना भी छोड़ दिया। बहू गई, अपने साथ पोता भी ले गई। बिशूको अब पता नहीं लगता था कि वह क्या करे। दिन भर अकेला, दिन भर बेकार, दिन भर खाली।

फिर ज़रूरतोंने तंग करना शुरू किया। ग़रीबी कदम कदम पर मुसीबत बन जाती। कभी घरमें कुछ पकता, कभी न पकता। बच्चे आपसमें लड़ते, पत्नी लपक लपक कर उन्हें काट खानेको दौड़ती। इस तरह दिन बीतते रहे, बीतते रहे और फिर बीतने कठिन हो गये।

विशू बूढ़ा हो गया था। हाथ-पाँव हिलाता भी तो क्या कर लेता। अब उसका दूसरा बेटा भी जवान था और तीसरा भी हट्टाकट्टा था।

विशू सोचता रहता, सोचता रहता—अपने शहतीरसे जवान बेटोंका वह क्या करे ? अपने निर्बल, कमज़ोर अंगोंका वह क्या करे ?

और फिर एक दिन सवेरे तड़के ही गाँव भरमें शोर मच गया...विशू और विशूके बेटे एक घरमें सेंध लगाते हुए मौके पर पकड़े गये। सबको ढाई ढाई साल कैद की सज़ा हुई। बिशूका नाम फिर दस नम्बरमें लिखा गया और उसके सब बेटे नौ नम्बरमें गिने जाने लगे।

जंगू

जंगबहादुरके जन्मसे पूर्व यह फ़ैसला हो गया था कि लड़केको सेनामें भर्ती करवाया जायगा। उसके जन्मके बाद जब ही तो घरवालोंने उसका नाम जंगबहादुर रक्खा था।

फ़ौजके लिए पैदा हुआ जाटोंका लड़का जंगबहादुर बड़ा अक्खड़ था। प्रतिदिन उसके गिले आते। प्रतिदिन उसकी शिकायतें आतीं। जो भी शिकायत करने आता उसका पिता यही कहता, "ठीक है भाई, पर हम कौनसा उसे घर बैठा रक्खेंगे। हम भी तो उसे फ़ौजमें भर्ती करवा रहे हैं।" और पिताकी इन बातोंका बिगाड़ा जंगू नित नया गुल खिला आता। पराई घोड़ियोंको दौड़ाता रहता। कुएँकी माला पकड़कर नीचे उतर जाता और जिस कुएँमें से लोग पानी भरते उस कुएँमें नहा आता। शामको जब औरतें पानी भरनेके लिए आतीं तो नीचे कुएँमें से आवाज़ें देने लगता—"भाबी ज़रा पीठ कर लेना मुझे बाहर निकलना है।" और गाँवकी लड़कियाँ कहतीं, "हम पीठ नहीं करेंगी, तुम बाहर निकलो चाहे न निकलो।" जिस खेतमें खरबूजे मीठे होते उस खेतके चक्कर काटता रहता और तोड़ तोड़कर खुद भी खाता, अपने मित्रोंको भी खिलाता। कई बार खेतके मालिकको भी चखा आता। लाख उसके पिताने जतन किये जंगू न स्कूल बैठा, न उसने चार अक्षर पढ़े। जब भी कोई उसे कुछ कहता, उसका उत्तर एक ही होता, "हमें तो गोली ठंडी करना है। गोलीके आगे पढ़ा क्या और अनपढ़ा क्या।" और उसकी मां हमेशा यह सुनकर उसे फटकारती, 'ऊल-जलूल न बोला करो, जो मुँहमें आता है बकता रहता है।' वह तो सोचती थी उसका बेटा कप्तान बनेगा, सरदार बनेगा। जैसे उसका मामू बना था। तमग़ोंसे उसकी

छाती भर जाती थी। जिस सड़कसे गुज़रता लोग उठ-उठकर उसे सत्कार देते थे। और सरकारके घर उसे कुर्सी मिलती थी। कईके काम उसके दस्तख़तोंसे चल जाते थे, कईके काम उसका नाम लेनेसे हो जाते थे।

और जिस दिन जंगू पूरी आयुका हुआ, उसका पेंशनी मामू उसे शहर जाकर भर्ती करवा आया।

भर्ती कराकर जब मामू लौटने लगा तो आज पहली बार जंगूका दिल ज़रा घबराया। उसे इस तरह उदास देखकर उसके मामूने उसको पाँच सात मोटी-मोटी गालियाँ दीं और स्वयं घोड़ीपर बैठकर चला गया। मामूकी गालियोंकी मीठी मीठी गूँज उसके कानोंमें कितनी देर गूँजती रही। और जंगूकी वह शाम मज़ेमें गुज़र गई। छावनी उसे कोई पराई जगह न लगी। छावनीके लोग उसे ग़ैर महसूस न हुए। और अगले दिन तो रंगरूटने गाड़ीमें बैठकर दूर कहीं सिखलाईके लिए चला जाना था।

गाड़ीमें बैठे अगले दिन जंगूने कई बार अपने मामूकी वही गालियाँ दिल ही दिलमें कुलियोंको दीं, अपने साथ बैठी हुई सवारियोंको दीं, अपने पुराने साथियोंको याद करके उन्हें दीं, अपने अफ़सरको दीं, जो हर बार उससे यों बोलता था जैसे कोई किसीको पत्थर उठाकर मार रहा हो।

सिखलाईके कैम्पमें पहुँचकर पहले दिन ही जंगूका जैसे दम घुटा घुटा लगने लगा। नई जगह, नये लोग, सबसे बड़ी बात उनकी नई भाषा। पता नहीं कैसे बोलते थे, जंगूके पल्ले कुछ नहीं पड़ता था। न जंगू खुलकर हँस सकता, न जंगू खुलकर रो सकता, न जंगू किसीके साथ ऊँची ऊँची बातें कर सकता, न जंगू किसीको गालियाँ दे सकता। उसकी केवल इतनी ही समझ आती, अब खड़ा होनेको कह रहे हैं, अब बैठनेके लिए कह रहे हैं, अब खानेका समय है, अब सोनेका हुक्म दे रहे हैं और बस।

जंगू बहुत उदास था, बहुत परेशान था, कई बार वह सोचता वह वहाँसे भाग निकले। एक बार तो उसने फ़ैसला भी कर लिया। फिर उसको अपने मामूकी गालियोंकी याद आई और उसने अपना मन बदल लिया। उसने यह भी सुन रक्खा था कि फ़ौजमें भर्ती होकर कोई भागे तो लोग उसे भगोड़ा कहकर पुकारते हैं और सरकार भी कभी माफ़ नहीं करती, पकड़कर जेलमें बन्द कर देती है।

बहुत दिन नहीं गुज़रे थे कि जंगूको वहाँकी भाषा तो कुछ कुछ समझ आने लगी। सारा दिन मेहनत इतनी करनी होती थी कि चिन्ता करने का उसके पास समय नहीं बचता था। किन्तु फिर भी एक भूख उसके अंग-अंगमें समाये रहती थी। वह अपने माता पिताको भूलने लगा, अपने साथियोंकी उसे अब याद न आती। पर यह जो एक सूना-पन था उसके अन्दर, वह इसका क्या करे? उसका जी चाहता वह ऊँचा-ऊँचा कोई गीत गाये, ऊँचा-ऊँचा किसीको आवाज़ें दे। लस्सी पिये तो किसीके साथ बाँटकर पिये, खाने बैठे तो किसीसे छीनकर खाये, किसीको खिलाकर खाये। जंगूकी यह भूख दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी।

हर समय वह मुरझाया मुरझाया रहता, हर वक्त वह उखड़ा उखड़ा रहता। जबसे कैम्पमें आया था जंगू जैसे सूखने लग गया हो।

और फिर एक दिन अख़बार पढ़ रहे उसके एक साथीने उसे अख़-बारमें छपे एक पंजाबी नेताका चित्र दिखाया और बताया जिस शहरमें उनका कैम्प था वह नेता वहाँसे उसी शाम गाड़ीमें गुज़र रहा था।

जंगूके लिए जैसे चाँद चढ़ गया हो। सुनते ही वह खिल सा गया। पर कैम्प तो शहरसे दस मील दूर था। और शामकी गाड़ीमें मुश्किलसे तीन घंटे बाक़ी थे।

इन तीन घंटोंमें जंगूने कैम्पसे बाहर जानेकी छुट्टी भी ली, तैयार भी हुआ, और एक सांस दौड़ता हुआ स्टेशन पर जा पहुँचा। उसके पहुँचने से कुछ क्षण पहले गाड़ी आ चुकी थी। जंगूने लेमनकी दो बोतलें खरीदीं और डिब्बा डिब्बा तस्वीर वाले आदमीको ढूंढने लगा। सर्दियोंके दिन थे, अंधेरा हो चुका था। आख़िर उसने अपने पंजाबी भाईको ढूंढ लिया। और जाते ही एक बोतल सोडेकी उसे दी और दूसरीको खोल कर ख़ुद पीने लग गया। जिस प्यारसे जंगू जाकर उसे मिला, जिस मुहब्बतसे वह उसके गले जाकर लगा, दूसरा भी ठंडकी परवाह न करते हुए बोतलको मुँह लगाये उसका साथ देने लगा। और फिर कितनी देर हँस हँस कर वह बातें करते रहे। सारे स्टेशनको जैसे उन्होंने सर पर उठा लिया।

जब गाड़ी चलने लगी तो जंगू उसके गले लग गया। बाहोंमें बाँहें डाले कभी यह उसे धरतीसे उठा लेता, कभी वह इसके पाँव ज़मीनसे उखेड़ देता। और जब तक गाड़ी नहीं चली वह एक दूसरेको ऐसे चिमटे रहे।

छः महीनेकी सिखलाईके बाद जंगूकी तबदीली दूर दक्खिनमें बंगलौरके पास किसी छावनीमें हो गई। अब वह बाक़ायदा फ़ौजी सिपाही बन गया था। अब वह वर्दी पहनता था। कई बातें अंग्रेज़ीकी उसे समझ आ गई थीं। हिन्दुस्तानीमें बात करते लोगोंको सुनकर अब उसे वहशत नहीं होती थी।

अब उसका जी लग रहा था। अब उसने धीरे बोलना सीख लिया था। अब उसे दौड़नेकी बजाय चलना आ गया था। अब जब उससे कोई बात करता उसे दूसरेकी बात सुननेकी आदत हो गई थी। अब जहाँ उसे खड़ा होनेके लिए कहा जाय वहाँ वह खड़ा रहता, जहाँ उससे बैठनेके लिए कहा जाता वहाँ वह बैठ जाता।

पर एक भूख थी जंगूके अन्दर जो मिटनेमें नहीं आ रही थी। एक सूनापन जो हमेशा उसे अपने अन्दर महसूस होता रहता। एक बेचैनी जो कभी कभी दर्दमें परिवर्तित हो जाती।

नये कैम्पको जा रहा गाड़ीमें जहाँ कहीं भी जंगू अपनी तरफ़का कोई देखता, उसके पास जाकर खड़ा हो जाता। कई बार बात भी न करता, बस यों ही पास खड़ा सवाद लेता रहता। एक सुगन्ध सी उसको आती अपनी तरफ़के पुरुषोंमें से, औरतोंमें से, बच्चोंमें से। उनकी तरफ़के दो आदमी एक जगह बैठे बातें कर रहे थे, यह उनके पास जाकर खड़ा हो गया। छोटी-छोटी इधर-उधरकी बातें वह अपनी भाषामें कर रहे थे। और जंगूकी आँखोंके सामने मक्खनसे भरी छलक छलक पड़ती चाटियों, सिर सिर ऊँचे मक्काके टांडों और कीकरके गोरे गोरे लम्बे लम्बे कांटोंके चित्र घूमने लगे। नशामें उन्मत्त वह कितनी देर वहीं खड़ा रहा।

नये कैम्पमें जहाँ वह आया कोई भी तो अपनी ओर का आदमी उसे नज़र नहीं आता था। न कैम्पमें न बाजारमें। एक बार वह छावनी के साथ लगते शहरमें भी गया। सारा इतवार घूमता रहा। उसके मतलबका कोई आदमी नहीं दिखाई दिया। और थक कर, हार कर शामको वह अपने ठिकाने पहुँच गया।

कई बार अकेले जंगूकी आँखोंमें अश्रु आ जाते। और फिर उसे अपने आप पर शर्म आ जाती। जंगू तो कभी रोया नहीं था। जंगू तो रोना जानता ही नहीं था। कई बार उसका जी चाहता वह नौकरी छोड़ कर भाग जाय। फिर उसे अपने मामूकी दी हुई गालियाँ याद आ जातीं। गालियाँ याद आतीं और वह नशेमें जैसे खो जाता। और कितनी देर अपने होंठोंमें बार बार उन गालियोंको दुहराता रहता।

जंगूको इस कैम्पमें आये कई दिन हो गये थे। उसे अब न खाना अच्छा लगता था न काम करना अच्छा लगता था। सारा सारा दिन

कसरतें करता, मेहनत करता, वह सूखता जा रहा था। उसे कभी कभी लगता जैसे किसी मरखन्ने बैलको जकड़ कर उसके मुँह पर जाबा बाँध दिया जाय। और वह हैरान परेशान, उखड़ा उखड़ा न सो सकता, न आराम कर सकता।

उसके घरसे कभी कभी चिट्ठी आती। परन्तु न वह स्वयं पढ़ा था न उस कैम्पमें किसी औरको उस भाषाका ज्ञान था। और बस चिट्ठियों को वह देख लेता। कभी हर सतर पर उंगली फेरने लगता, कभी बहुत उदास होता तो रातके अंधेरेमें चिट्ठीको उठाकर चूम लेता। और फिर उसे बड़ी शर्म आती। कोई देख ले तो क्या कहे!

हर बात इशारोंसे, हर काम अंदाज़ेसे, कभी कभी जंगू चिढ़ जाता। उसे लगता जैसे उसे किसी बड़ेसे पिंजड़ेमें बन्द कर दिया गया हो। हवा थी, रोशनी थी किन्तु उसके पर बंधे हुए थे, जकड़े हुए थे।

कई दिन इस तरह गुज़र गये। फिर एक छुट्टी वाले दिन जंगू जब सुबह सोकर उठा, वह बड़ा उदास उदास था। उसका जी चाहता कोई बहाना हो तो वह रो दे। कई दिनोंसे उसे घरसे चिट्ठी भी तो नहीं आई थी। उस दिन जंगूने सुबह न डेढ़ सौ डंड पेले न दो सौ बैठकें निकालीं। उसको डंड पेलते देखकर उसके साथके सिपाही मुँहमें उँग-लियाँ देकर काटते रहते थे। कसरत कर रहा जंगूका शरीर तांबेकी तरह चमकने लगता था। और अपने साथियोंको खुश हो रहा देखकर जंगू दिल ही दिलमें कहता, 'आजकल तो क्या, कभी तुमने मुझे मेरे गाँवमें देखा होता।' अपने गाँवकी याद आती तो जंगूका जी बैठ जाता। उसका गाँव उससे छूट गया था। अगर धूप अच्छी होती तो वह सोचता हमारी तरफ़ धूप ऐसी होती है। मीठी मीठी हवा उसे अपनी ओरसे आ रही महसूस होती। वह गुम सुम स्वाद स्वादमें खोया रहता।

उस दिन वह कुछ ज़्यादा ही परेशान था। खानेके समय उससे खाया न गया। पिछली रात नींद भी तो उसे नहीं आई थी। जैसे

कोई बीमार बीमार हो। उसका शरीर ढीला ढीला लग रहा था। उसने देखा उसके कुछ साथी शहर जा रहे थे। वह भी उनके साथ तैयार हो गया। दिन ही कट जायगा, उसने सोचा।

उसके साथी तो अपने अपने कामसे लग गये, और जंगू अकेला इतने बड़े शहरमें बाज़ार बाज़ार, गली गली घूमने लगा। एक अजीब भटकन उसे महसूस हो रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसे हो क्या गया है। न एक स्थानपर बैठ सकता था न एक स्थानपर खड़ा हो सकता था।

सारा दिन इस तरह वह अकेला घूमता रहा। सारा दिन न उसने कुछ खाया न कुछ पिया। जैसे उसे किसी चीज़की तलाश हो, कोई चीज़ जिसकी उसे पहचान नहीं थी। जैसे उसे कोई भूख लगी हो परन्तु उसे समझ नहीं आ रहा था क्या वह खाय तो उसकी वह भूख मिटे। चल चलकर उसके पाँव थक गये थे, झाँक झाँककर उसकी आँखें तृप्त नहीं हुई थीं। जैसे किसीको किसीकी प्रतीक्षा हो।

फिर बड़े बाज़ारमें एक दूकानके सामने खड़ा वह सामने आ रही बसके गुज़रनेकी प्रतीक्षा कर रहा था कि उसके पाससे अधेड़ उम्रका एक जोड़ा गुज़रा। मर्द कोई व्यापारी था।

"भागवाने इसे कंम विच वारे न्यारे हो जाँणगे ते फिर दुधां दियां मधानियां ते लस्सी दे छन्ने..." जंगूके कानोंमें यह बोल पड़े तो जैसे उसके दिल पर फूलोंकी वर्षा होने लगी हो, एक आँख झपकनेमें वह मस्त हो गया।

"ते फिर पिपलां दियां छावां ते खूहां दा ठंडा ठंडा पाणी..." मर्द बोल रहा था और जंगू जैसे बंधा हुआ उनके पीछे पीछे चल पड़ा।

"साड़े पासे अजकल सरहों खिड़ पई होणी एँ।" अब औरत बोल रही थी। "कणकां कद कर आइयां होणियां नें। कित्ते कित्ते सिट्टे सिरोड़ियां चुकी झांक रहे होणेने।"

"अजकल मंहियां दा दुध सवादला हो जांदा है। दुध ते दुध आजकल ते........."

पीछेसे तेज़ आ रही एक मोटरने एकदम ब्रेक लगाकर मुश्किलसे जंगूको पहिएके नीचे आनेसे बचाया। पता नहीं कैसे वह सड़क पर चल रहा था। बच तो गया पर बौखलाया हुआ जंगू सामने सड़क पर औंधा जा गिरा।

"मैं मर गई"......दौड़ कर आगे जा रहे उस जोड़ेने जंगूको उठा लिया।

"हाय किहा सोहणा टाहली वरगा जवान ए, जिवें साडे पासे दा होवे..."नीम बेहोशीमें उसे वह लोग उसी मोटरमें डाल कर अस्पताल ले गये और जंगू कितनी देर स्वाद स्वाद अधेड़ उम्रके उस जोड़ेकी बातें सुनता रहा।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण
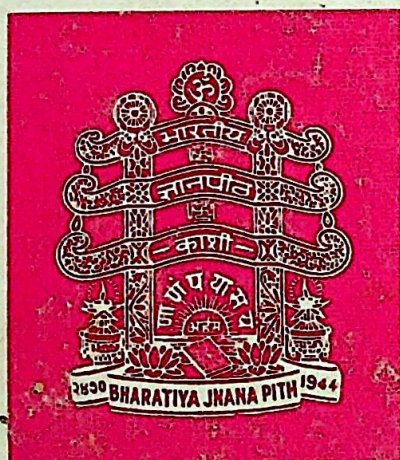
संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी